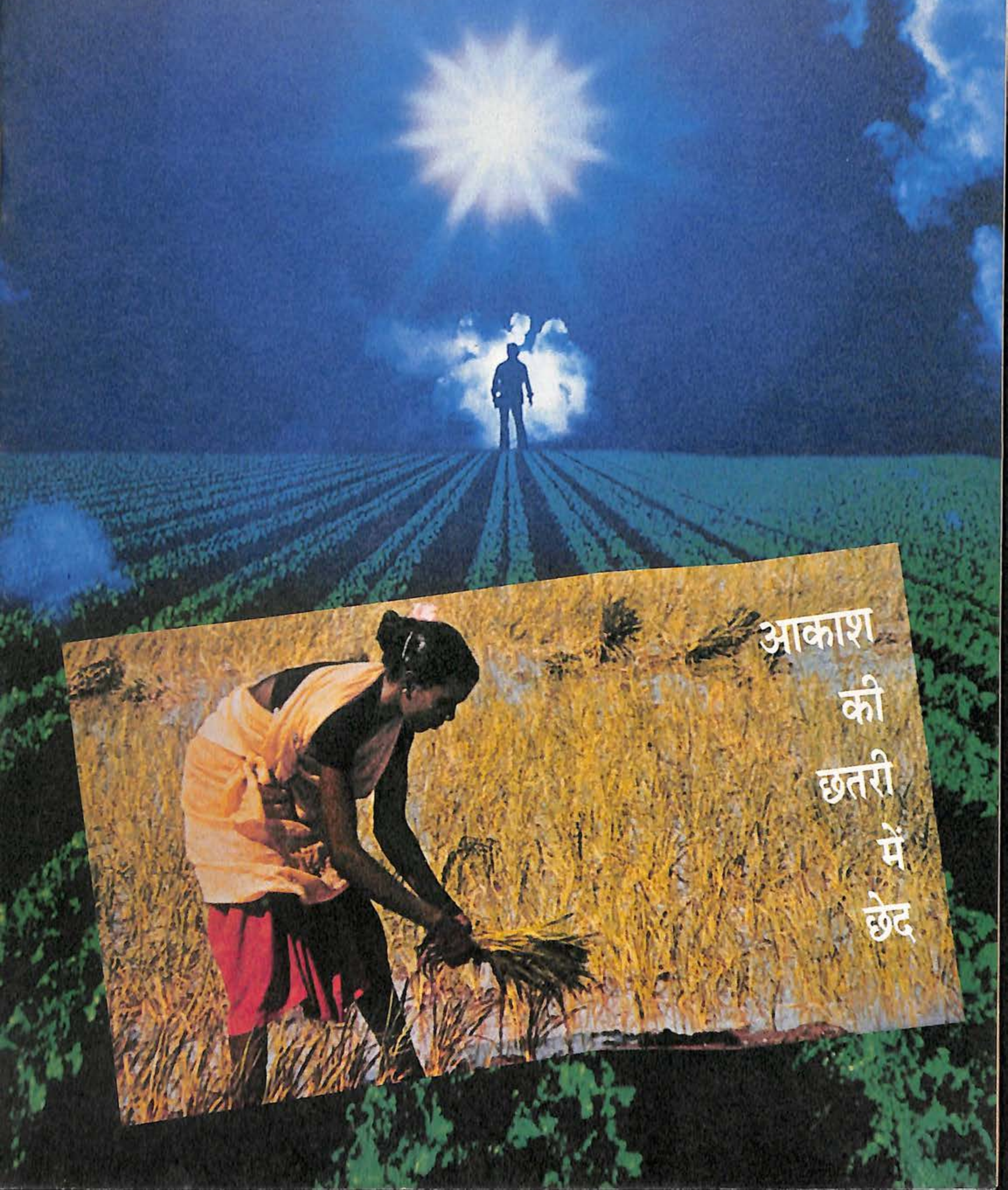
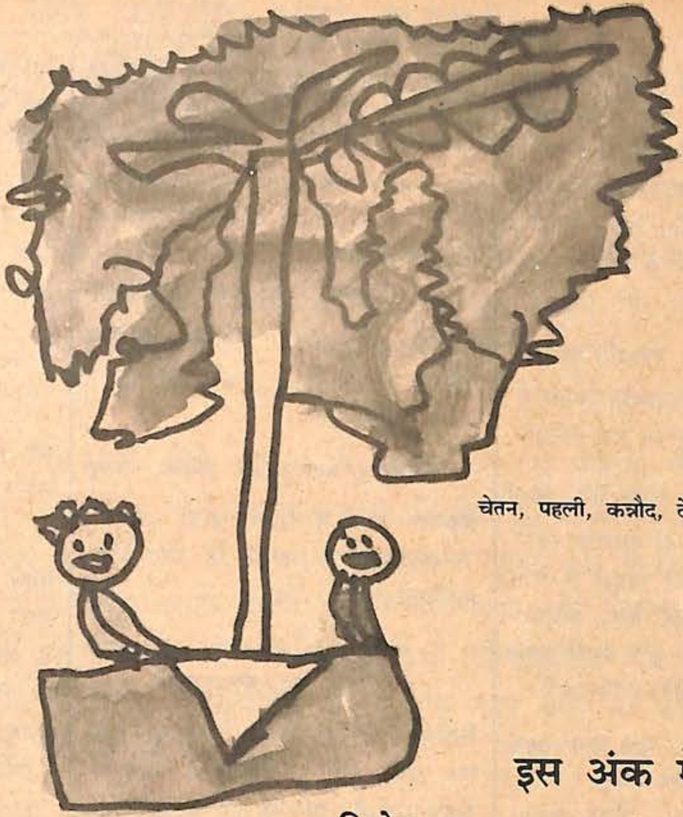
चकमक

दिसंबर, 1990 — बाल विज्ञान पत्रिका — रु. 4.00





लोकेंद्र सिंह सोलंकी, धार



चेतन, पहली, कन्नौद, देवास

चकमक बाल विज्ञान पत्रिका
वर्ष-6 अंक-6 दिसंबर 1990.
संपादक
विनोद रायना
सह-संपादक
राजेश उत्साही
कविता सुरेश
कला
जया विवेक
उत्पादन/वितरण
हिमांशु बिस्वास, कमलसिंह

चकमक का चंदा
एक प्रतिः *चार रुपए*
छमाही : *बीस रुपए*
वार्षिक : *चालीस रुपए*
डाक खर्च मुफ़्त
चंदा, मनीऑर्डर या बैंक ड्राफ्ट से एकलव्य के नाम पर भेजें।
कृपया चेक न भेजें।

पत्र/चंदा रचना भेजने का पता
एकलव्य,
ई-1/208, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल-462 016 (म.प्र.)
फोन : 563380

कागज़ : 'यूनिसेफ' के सौजन्य से। **सहयोग** : राष्ट्रीय विज्ञान व प्रौद्योगिकी संचार परिषद (विज्ञान व प्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली)

इस अंक में...

एकलव्य एक स्वैच्छिक संस्था है जो शिक्षा, जनविज्ञान एवं अन्य क्षेत्रों में कार्यरत है। चकमक, एकलव्य द्वारा प्रकाशित अव्यवसायिक पत्रिका है। चकमक का उद्देश्य बच्चों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति, कल्पनाशीलता, कौशल और सोच को स्थानीय परिवेश में विकसित करना है।

पाठक लिखते हैं

मैंने चकमक पढ़ी और उसकी तरफ इस तरह आकर्षित हुआ, जिस तरह शहद मक्खियों को आकर्षित करता है। यह मासिक छोटे बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए बहुत हद तक सफल है। इससे वे अपना मनोरंजन भी कर सकते हैं और मानसिक विकास भी!

☐ **राजेश श्रीखंडे, नवसारी, अमरावती**

मुझे यह पत्रिका बहुत अच्छी लगती है। पर इस पत्रिका के स्तर में सुधार होना चाहिए।

☐ **सुनील कुमार सिंह, दिल्ली**

सितंबर, 90 का अंक का अध्ययन किया। वास्तव में हिंदी माध्यम से बालकों में विज्ञान के प्रति रुचि वर्द्धन के लिए साधुवाद। बच्चे रचनात्मक कार्य के प्रति काफी उत्सुक होंगे। ऐसी धारणा इस पत्रिका से मिलती है।

☐ **रामचंद्र शुक्ल, हिंदी विभागाध्यक्ष, ऋषि वैली स्कूल, चित्तूर (आ.प्र.)**

मैं कई दिनों से चकमक पढ़ रही हूं। हमारे स्कूल में हर माह आती है। मुझे सितंबर अंक में *नीलकंठ* के बारे में जानकारी अच्छी लगी।

☐ **किरण सिसौदिया, दानीटोला, मंडला**

सितंबर का अंक देखा। इसमें मुझे *गांव गांव के खेल सांझी, झांझी, टेसू* बहुत प्रिय लगे। और इस अंक में प्रस्तुत एक नया पन्ना *क्यों... क्यों* बहुत ही पसंद आया। '*इक्कीसवीं सदी*' ने मेरे मन को लुभाया।

☐ **एम.के. रायकवार, नंदानगर, इंदौर**

आप चकमक में 'दुनिया पक्षियों की' के अंतर्गत विभिन्न पक्षियों के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रदान कर रहे हैं।

☐ **सैयद तौहिद हसन, गया, बिहार**

सितंबर अंक शानदार निकाला। सभी से अधिक उल्लेखनीय है *सांझी और टेसू* पर जानकारी। साधुवाद।

☐ **राष्ट्रबंधु, बाल साहित्य समीक्षा, कानपुर**

सितंबर अंक में *सांझी, झांझी और टेसू* के अलावा अन्य सामग्री भी पसंद आई। विशेषकर '*क्यों... क्यों?*'

☐ **मुकेश मंडल, प्रतापगंज; राजेश कुमार, मुरारपुर गया; सीमा कुमारी, पटना;**

सितंबर अंक में अनेक रोचक ज्ञानवर्द्धक एवं अनूठे लेख अनायास ही पढ़ने को बाध्य करते हैं। इक्कीसवीं सदी नामक कविता जहां भविष्य की प्रगति की रूपरेखा प्रस्तुत करती है, वहीं संदेह भी व्यक्त करती है कि भविष्य कैसा होगा? या जैसा हम सोचते हैं? यह कविता सराहनीय है।

☐ **भीमसिंह, प्राचार्य, बालविकास विद्यालय, परसकुंआ, रोहतास**

हमने चकमक देखी, जो हमें बहुत अच्छी लगी और आप हर छोटे से छोटे कलाकार को उभरने का अवसर देते हैं तथा उसका उत्साह बढ़ाते हैं।

☐ **आशीष दुबे, बुरहानपुर**

अक्टूबर अंक में नया हस्ताक्षर रितु वर्मा, मन को भा गई। इसका प्रयास, लगन, मेहनत वास्तव में आने वाले समय में ख्याति प्राप्त कलाकार बनाएगी। इसी श्रृंखला में रचनाकार शिवेंद्र पांडिया द्वारा अपनी नन्हीं कलम से वर्तमान परिवेश का चित्रांकन करना एक बहुत रोचक एवं प्रशंसनीय क़दम है। आशा है चकमक में रचनाकारों का परिचय ज़ारी रहेगा।

☐ **राजेंद्र नामदेव, ब्यावरा, होशंगाबाद**

यह एक ऐसी पत्रिका है जो बच्चों को विज्ञान की तरफ आकर्षित करने में सहायक है।

☐ **बृजेश कुमार शाक्य, नानमई, मैनपुरी**

सांझी, झांझी और टेसू पसंद आए। इसके सभी खेल वाले गीत अच्छे लगे। पत्रिका की कवर छटा आकर्षक लगी।

☐ **ओंकारसिंह भरावी, अध्यापक, टीकमगढ़**

सचमुच यह पत्रिका विज्ञान को सरल भाषा में समझाने वाले एक शिक्षक की तरह है।

☐ **श्यामसुंदर कोसे, पाटन, दुर्ग**

मैं चकमक का तीन साल पुराना पाठक हूं। चकमक पढ़ने के लिए कहीं न कहीं से ढूंढ ही लेता हूं। वैसे तो चकमक के सभी अंक विशेष ज्ञानवर्धक निकलते हैं, पर सितंबर, 90 का अंक विशेष पसंद आया।

सांझी, झांझी और टेसू के बारे में जानकारी महत्त्वपूर्ण एवं रोचक लगी।

चकमक अन्य पत्रिकाओं से भिन्न अपनी तरह की उत्कृष्ट पत्रिका है, शिक्षा के क्षेत्र में मैंने ऐसी पत्रिका अभी तक नहीं पढ़ी

☐ **जगदीश शर्मा, इकारा, दतिया**

अगस्त अंक में होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम की पाठ्यपुस्तक बालवैज्ञानिक, कक्षा आठ का एक अध्याय 'सजीव और निर्जीव' प्रकाशित किया गया था। अध्याय के सवालों के जवाब बहुत सारे पाठकों ने बहुत मेहनत से लिखकर भेजे हैं। हमें उम्मीद है कि सभी ने सवालों पर आवश्यक सोच-विचार भी किया होगा। उत्तर भेजने वालों के नाम यहां प्रकाशित कर रहे हैं—

ज्योतिष कुमार साहनी, छपरा। राकेश कुमार, बसंत पट्टी। जितेंद्र कुमार, शेरगढ़, खगड़िया। रजनीश कुमार,अवनीश कुमार, कोरमा। गणेशसिंह, पंजवार, सिवान। निर्मल गोयल, गोपाल अग्रवाल, सालिमपुर। राजीवकुमार, बीहट। कुमार शंभु शरणम्, बीका सुल्तानपुर। राजेश कुमार, मुरारपुर। रघुनाथ शर्मा, रोहतास। मिथलेश कुमार, तिसखोरा। पंकज कुमार, मानपुरा। अश्विनी कुमार पंडित, समस्तीपुर। मो. खुर्शीद आलम, औरंगाबाद। संजीव पंडित, घरनी पट्टी। राघव प्रसाद विद्यार्थी, पूर्वी चंपारण। संतोष मिश्र, किनंगी, भोजपुर। शेष सनातन, सारण। अजय कुमार, **सभी बिहार**। घनश्याम उपाध्याय, विजहरा। राधेश्याम मौर्य, प्रतापगढ़। सुंदरलाल वर्मा, बिलग्राम, हरदोई। विपिन सक्सेना, गोला गोकर्ण नाथ, खीरी। रामनयन, परासिया, देवरिया। जीतेंद्र तिवारी, भुलसो, हमीरपुर। राजेश शर्मा, श्रीलाल मौर्य, मिथलेश मौर्य, सुरेशचंद्र यादव, रामनगर, जौनपुर। शिवकुमार मौर्या, फाजिलपुर, सुल्तानपुर। रमेश विश्वकर्मा, शिवगढ़, रायबरेली। बालकराम बरई, रामदासपुर मझौली; सियाराम यादव, बीकापुर; फैजाबाद। अंजना सिंह, इटावा। अर्चना चौहान, अलीगढ़। बलराम गुप्त, इलाहाबाद। श्रैय तिवारी, जैथरा। संतोष रावत, फतेहपुर। सुनील कुमार दुबे, लखेचा, सुल्तानपुर। रणजीत यादव, वासुदेवपुर, फैजाबाद। सीताराम शुक्ल, प्रगति शुक्ला। **सभी उत्तर प्रदेश**। चंद्रपाल दूहण, करेला हरियाणा। राजाराम मिश्र, मनोरमा मिश्र, अशोक मिश्र; गुलुवा; सतना। महावीर जैन, देहरिया साहू, देवास। महेश रायकवार, नंदानगर; अमर नंदू गुर्जर, मारूतीनगर; इंदौर। गंगाधर नारंग, जवाली; विजय ईप्पन, जांजगीर, बिलासपुर। रूचि सकलेचा, नलखेड़ा। जगदीश सूर्यवंशी, गुना। संतोष मेहतो, पथरौटा, इटारसी। **सभी मध्यप्रदेश**। अणिमा प्रभा, पटना। देवानंद निराला, रोहतास।

मैंने सीखा रोटी बनाना!

जब मैं मिडिल स्कूल में पढ़ता था तो वहां पढ़ाई-लिखाई के साथ-साथ लड़कों को पाक-विज्ञान की शिक्षा भी दी जाती थी। इसमें सभी छात्रों को भाग लेना पड़ता था। जो इसमें भाग नहीं लेते थे उन्हें परीक्षा में नंबर नहीं मिलते थे। अर्थात यह विषय भी परीक्षा में शामिल था।

इस विषय में हमें रोटियां बनाने, सब्ज़ी बनाने तथा अन्य चीज़ों को छानने की शिक्षा दी जाती थी। कुछ छात्र इस विषय को चाहते थे, पर कुछ इस विषय को पसंद नहीं करते थे। लेकिन सभी को इसमें भाग लेना पड़ता था क्योंकि परीक्षा में नंबरों की चिंता जो लगी रहती थी। मैं भी इस विषय को न चाहने वालों में से एक था, पर क्या करता।

मुझे सब्ज़ी बनानी और दूसरी चीज़ें छानना तो आती थीं, पर रोटियां बनाना मेरे लिए बड़ी मुश्किल का काम था। एक दिन मैंने यह बात ठान ली कि रोटियां बनाना ज़रूर सीखूंगा। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैं रसोईघर में गया। थोड़ा आटा लेकर उसे पानी डालकर गूंथा। उसके बाद उसमें से थोड़ा-सा गुंथा आटा लेकर चकले पर रखा और बेलन से उसे बेलना शुरू किया, तो लंबी और मोटी रोटी बनी। मैंने उस रोटी को तोड़कर फिर से उसे बेलना शुरू किया। वह फिर टेढ़ी-मेढ़ी और मोटी-पतली बनी। इस तरह आठ-नौ बार प्रयास किया पर रोटी हर बार टेढ़ी-मेढ़ी और बेढंगी ही बनी।

हार कर मैं बैठ गया और सोचने लगा कि क्या करूं। तभी मुझे ख़्याल आया कि आटा ज़्यादा नरम हो गया था। मैंने गुंथे हुए आटे में थोड़ा और आटा डाला और उसे थोड़ा कड़ा किया। फिर रोटी बनाने की कोशिश की। धीरे-धीरे चकले को घुमा-घुमा कर रोटी बेलना शुरू की। अब रोटी कुछ-कुछ चौकोर बनी। मैं बहुत खुश हुआ। इसी तरह आठ-नौ दिन रोज़ मेहनत करके गोल और अच्छी रोटी बनाना सीख लिया।

☐ निर्मल कुमार गोयल, पटना



चारू अग्रवाल, नवमीं, भोपाल

वो पिटाई अब तक याद है!

एक बार की बात है, मैं ननिहाल गया था। वहां पर नानी के एक और नाती था। वह बहुत खड़िया मिट्टी खाता था। एक दिन मैंने जब उसे देखा तो उसके मुंह से मिट्टी निकाल कर फेंक दी। वह ज़ोर से रोने लगा।

मैंने कहा, "अबे चुप मामा के बच्चे नहीं, तो मारूंगा।"



प्रकाश, पांचवीं, अरलावदा, देवास



पिंकी सरोया, छठवीं, मक्सी

तब वह और तेज़ी से रोने लगा। मैंने एक चांटा लगा ही दिया। वह और ज़ोर से रोने लगा और नानी के पास जाकर सब कुछ बता आया। नानी मुझ पर बिगड़ने लगीं। डंडा लेकर मेरे पीछे भागीं। मैं डर कर भागा। भागते-भागते मैं एक मेड़ से टकरा गया और पास ही के एक गड्ढे में कीचड़ में गिर पड़ा। अब नानी को मौका मिल गया वह मुझे मारने लगी।



मनोज गोयल, आठवीं, भिण्ड

नानी मार चुकी, तो मैं कीचड़ से बाहर निकला। मुझे कीचड़ में सना देख कर एक कुत्ता मेरे पीछे लग गया और भौंकने लगा। मैं बचने के लिए पास की ही नहर में जा कूदा। मेरे साथ-साथ कुत्ता भी नहर में कूदा और कुत्ते ने मुझे काट लिया।

वहां से निकल कर मैं डॉक्टर के पास पहुंचा। डॉक्टर ने पट्टी बांध दी और जब फीस मांगी, तो मैंने कहा कल दे दूंगा। तो वह डॉक्टर मुझे मारने लगा। मुझे डॉक्टर ने मार-मार कर भगा दिया।

अब तक मैं तीन बार मार खा चुका था। मेरी सूरत देखते ही बन रही थी। अब यहां से मेरा घर चार किलोमीटर दूर था। मैं साहस करके अपने घर की ओर चल दिया। घर पहुंचते-पहुंचते आठ बज गए। पिताजी ने मुझे देखा तो गुस्से में भर उठे। उन्होंने मुझे आठ-दस चांटे लगा दिए।

अब तक मैं चार बार मार खा चुका था। मार खाते-खाते मेरा कचूमर निकल गया था। मैं घायल सा पड़ा था। पिता जी ने मेरी दवा करवाई फिर मैं ठीक हो गया। लेकिन आज तक मुझे उस दिन की नानी के घर से लेकर अपने घर तक की मार नहीं भूलती।

□ नरसिंह मौर्य, डेढुआ, प्रतापगढ़, उ.प्र.

साइकिल टूर

मैं एन.सी.सी. के कुछ दिन पहले गए साइकिल टूर में गया था। उस दिन स्कूल की छुट्टी के बाद एन.सी.सी. नोटिस बोर्ड पर मैंने यह सूचना पढ़ी कि कल सुबह 7.30 बजे सभी छात्रों को स्कूल में उपस्थित हो जाना है। साइकिल टूर लगभग बीस किलोमीटर दूर जाना था।

घर जाकर मैंने मम्मी से सुबह जल्दी उठकर नाश्ता तैयार करने को कहा, और फिर मैंने अपनी साइकिल को टूर के लिये तैयार किया। सुबह जल्दी उठकर मैं ठीक समय पर स्कूल पहुंच गया। स्कूल पहुंचने पर मुझे पता चला कि साइकिल टूर बीस कि.मी. दूर न जाकर यहीं पास के गांव के एक मंदिर तक जाएगा। मंदिर यहां से आठ कि.मी. दूर है।

कुछ देर बाद सर स्कूल में आए। उन्होंने सभी लड़कों को तीन पंक्तियों में खड़ा करके गिनती की। मुझे अपनी छोटी साइकिल पर गर्व था। मेरी आदत तेज़ साइकिल चलाने की है। कॉलेज के लड़के भी टूर में जा रहे थे। कॉलेज स्कूल से कुछ ही दूरी पर है। हमारे सर कॉलेज से चलने का आदेश आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। तभी कॉलेज के एक लड़के ने आकर यह सूचना दी, कि कॉलेज के सभी लड़के तैयार खड़े हैं, आप लोग आ जाइए।

सभी लड़कों को तीन समूहों में बांट दिया गया। हर समूह का एक सार्जेंट था। इसके बाद सभी अपनी-अपनी साइकिलें लेकर सड़क के किनारे एक सीधी लाइन में खड़े हो गए। इसके बाद सर ने सभी लड़कों को कुछ बातें समझाकर चलने का आदेश दिया। मेरी टोली सबसे आगे थी। टोली में आगे-आगे सार्जेंट, उसके पीछे दो लड़के और तीसरे नंबर पर मैं था। मैं तेज साइकिल चलाना चाहता था, मगर सार्जेंट धीरे-धीरे साइकिल चला रहा था। मैंने सोचा कॉलेज तक धीरे चलाएगा, इसके बाद तेज़ चलाएगा। जब हम कॉलेज पहुंचे तो जो लड़के ड्रेस पहन कर आए थे वो सबसे आगे खड़े हो गए, और जो लड़के बिना ड्रेस के आए थे वो सबसे पीछे खड़े हुए।

पीछे जो कॉलेज के बिना ड्रेस वाले लड़के थे, वे चलते समय शैतानी कर रहे थे। उन्हें देख कर मेरे स्कूल के जो लड़के उनके आगे थे, वे भी शैतानी करने लगे। उन्हें रोकने के लिए हमारे आगे का सार्जेंट पीछे चला गया। तब मैंने, और मेरे पीछे के एक-दो लड़कों ने आगे के लड़कों से कहा, "यार, इतने धीमे क्या साइकिल चलाते हो कुछ तेज़ चलाओ तो मज़ा आए।" यह सुन कर मेरे आगे और पीछे के चार-पांच लड़के काफ़ी तेज़ साइकिल चलाने लगे। मैंने भी साइकिल तेज़ चलाई और हम बाकी लड़कों से आगे निकल आए।

कुछ देर तक तो मैं तेज़ साइकिल चलाता रहा, परंतु जब चढ़ाई आई तो छोटी साइकिल होने की वजह



दिव्या अग्रवाल, सातवीं, भोपाल

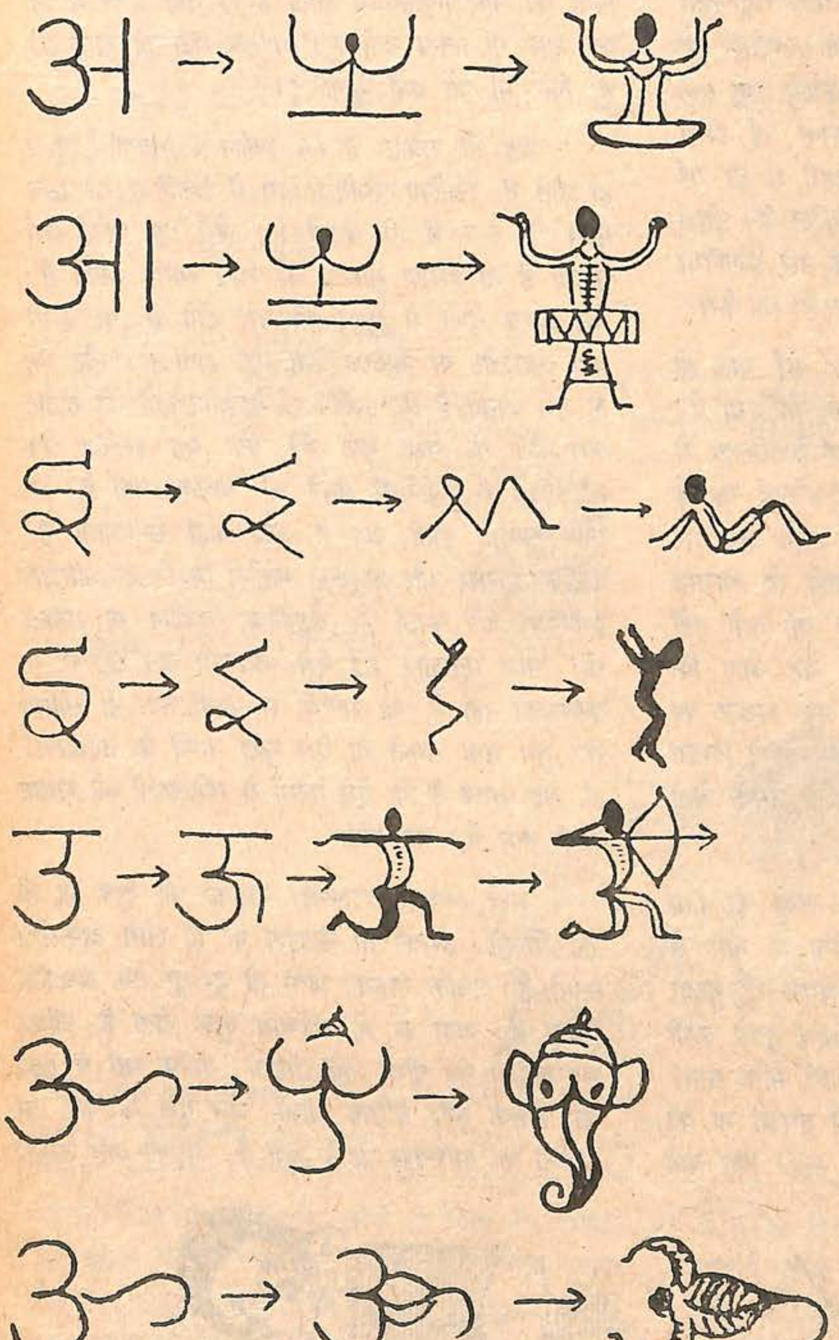
से मैं जल्दी थक गया। मेरे पीछे के तीन-चार लड़के मुझसे आगे निकल गए। तभी पीछे से मेरे सार्जेंट ने हम लोगों को आगे भागते हुए देख लिया, और हमें रोकने के लिए चिल्लाता हुआ आगे आया। मैं तो पीछे ही रह गया था। सार्जेंट ने मेरे पास आकर कहा, "यदि तुम सजा से बचना चाहते हो तो पीछे वाले लड़कों के साथ मिल जाओ।" मैं थक चुका था। अतः पीछे वाले लड़कों के साथ मिल गया। जो लड़के मेरे आगे थे, उन्हें सज़ा दे कर पीछे कर दिया गया। कुछ देर बाद हम लोग मंदिर पहुंच गए।

कुछ देर बाद जो गांव बीच में पड़ता था, वह आ गया। मिला। इस बार मैंने ज़्यादा तेज़ साइकिल नहीं चलाई। कुछ देर बाद जो गांव बीच में पड़ता वह आ गया। तभी मेरे एक दोस्त की साइकिल में पंचर हो गया। वह पास की दुकान पर रुका और उसने मुझसे रुकने को कहा, पर मैंने उससे कहा कि मुझे देर हो जाएगी। तुम बाद में आ जाना, मैं चलता हूं। हम लोग तीन किलो मीटर आ गए थे। अभी इतना ही और चलना था। तभी मुझे सामने से एक मारुति कार आती हुई दिखाई दी। सड़क ढलानदार थी। इसलिए साइकिल की स्पीड तेज़ थी। मैंने बिना ब्रेक लगाए साइकिल को सड़क से नीचे उतार दिया। कार के निकल जाने के बाद, जब मैंने बिना ब्रेक लगाए साइकिल को सड़क से ऊपर चढ़ाया, तो उसके पीछे वाले टायर में पत्थर का टुकड़ा लग जाने के कारण पंचर हो गया। एक लड़का पंचर सुधारने का सामान लाया था।

मैं तीन-चार लड़कों के साथ सड़क के किनारे पर रुक गया। दो-तीन लड़के मिलकर पंचर सुधारने की कोशिश करने लगे। थोड़ी देर बाद पानी बरसने लगा। कुछ देर तक तो लड़के भीगते हुए पंचर सुधारने की कोशिश करते रहे, परंतु बाद में पंचर ठीक न होने पर हम लोग पेड़ के नीचे खड़े हो कर यह सोचने लगे कि अब साइकिल को कैसे ले जाएं?

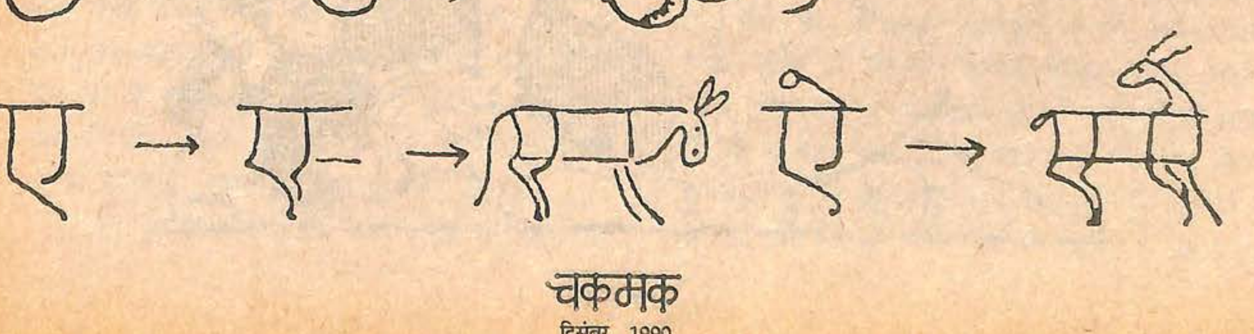
कुछ देर बाद सामने से एक ट्रैक्टर आता हुआ दिखाई दिया। ट्रैक्टर एक लड़के के जान-पहचान वाले का था। उसने ट्रैक्टर वाले से साइकिल ले चलने का अनुरोध किया। पर वह ट्रैक्टर मेरे कस्बे के पहले पड़ने वाले एक छोटे से गांव तक ही जा रहा था। मैंने सोचा—चलो ठीक है। उस गांव में जो सड़क किनारे एक छोटी-सी साइकिल की दूकान है, वहीं से पंचर सुधरा लेंगे। लेकिन वहां पहुंचने पर पता चला कि वह एक मात्र छोटी-सी दूकान भी बंद है। कुछ देर तक हम लोग सोचते रहे फिर एक लड़के की साइकिल के पीछे कैरियर में मैंने अपनी साइकिल को फंसा कर, बांध दिया और मैं दूसरे लड़के की साइकिल पर बैठ कर घर तक आया।

☐ दीपक खरे, महाराजपुर, छतरपुर



तुमने अ अनार का, **इ** इमली का, **क** कमल का, **ख** खरगोश का पढ़ा होगा। पर कभी **अ** में अनार, **इ** में इमली या **क** में कमल नज़र आया! नहीं न! पर अक्षरों को अपने अंदर छिपे कलाकार की नज़र से देखो तो तुम्हें **अ** में अनार तो नहीं, आदमी ज़रूर मिल जाएगा। अन्य अक्षरों में भी ऐसी ही तमाम आकृतियां मौजूद हैं, उन्हें थोड़ा उभारने की ज़रूरत है। आओ इस बार कुछ अक्षरों से ही चित्र बनाते हैं।

कल्पना : विष्णु चिंचालकर
चित्र : अविनाश देशपांडे



अख़्तर के अब्बा कौन?

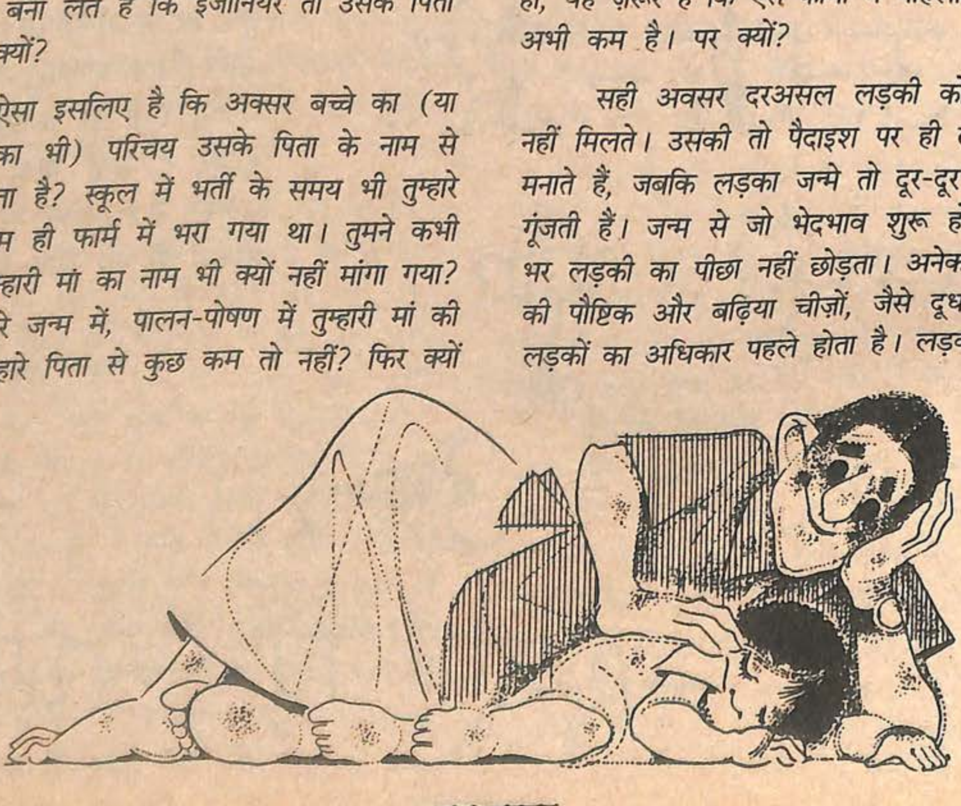
अख़्तर गणित में तेज़ है और रेडियो भी ठीक कर लेता है। उसके दोस्त उस पर नाज़ करते हैं और कई चीज़ें देखने या सीखने के लिए उसके पीछे पड़े रहते हैं। उन्होंने नई टीचर को बताया है कि अख़्तर यह सब करतब घर पर ही सीख लेता है, क्योंकि वह एक इंजीनियर का बेटा है। एक दिन अचानक नई टीचर की मुलाक़ात अख़्तर के अब्बा से कचहरी में हो गई और उन्हें पता चला कि वे एक बड़े वकील हैं। टीचर कुछ चक्कर में पड़ गईं, अख़्तर के दोस्त उसे इंजीनियर का बेटा कह रहे थे, पर उसके पिता तो वकील हैं! यह कैसे?

क्यों तुम भी चक्कर में पड़ गए? भई बात ही कुछ ऐसी है। इंजीनियर अख़्तर के पिता नहीं, मां हैं। अब यह सोचने की बात है कि अख़्तर के अब्बा से मिलकर टीचर चक्कर में क्यों पड़ गईं? सच्चाई यह है कि केवल टीचर ही नहीं, और भी कई लोग क्षण भर के लिए चक्कर में पड़ जाएंगे। तुम चाहो तो आज़मा कर देख लो। पर ऐसा क्यों होता है? यह क्यों नहीं होता कि लोगों के ध्यान में झट से यह आए कि अख़्तर की मां इंजीनियर हैं। शुरू में जब अख़्तर का परिचय मिलता है तो हम सभी क्यों अपने-अपने दिमाग़ में यह छवि बना लेते हैं कि इंजीनियर तो उसके पिता होंगे। ऐसा क्यों?

क्या ऐसा इसलिए है कि अक्सर बच्चे का (या किसी बड़े का भी) परिचय उसके पिता के नाम से ही दिया जाता है? स्कूल में भर्ती के समय भी तुम्हारे पिता का नाम ही फार्म में भरा गया था। तुमने कभी सोचा कि तुम्हारी मां का नाम भी क्यों नहीं मांगा गया? आखिर तुम्हारे जन्म में, पालन-पोषण में तुम्हारी मां की भागीदारी तुम्हारे पिता से कुछ कम तो नहीं? फिर क्यों हमारी पहचान केवल पिता के नाम से ही की जाती है? भई मैंने तो एक आदत ही बना ली है, जब भी पिता का नाम लिखवाया जाता है मैं वहां साथ में मां का नाम भी लिख देती हूं। आख़िर बेटी तो दोनों की हूं, फिर मां को क्यों भुला दूं।

यह हो सकता है कि इंजीनियर ज़्यादातर पुरुष ही होते हैं, इसलिए हमारे दिमाग़ में इंजीनियर की छवि पुरुष के रूप में ही बनती है। जैसे जब कोई नर्स कहता है तो हमेशा महिला की छवि सामने आती है। वैसे अन्य देशों में पुरुष भी नर्स होते हैं, पर हमारे यहां आमतौर पर महिलाएं ही नर्स होती हैं। ख़ैर यह तो हम जानते हैं कि इंजीनियरों में महिलाओं की तादाद कम है। पर ऐसा क्यों है? क्या यह इसलिए कि महिलाओं में इंजीनियर बनने की 'क्षमता' नहीं है? पर यह 'क्षमता' होती क्या है और कहां से आती है? क्योंकि अवसर और अनुकूल माहौल मिलने पर महिलाएं इंजीनियर भी बनती हैं, वैज्ञानिक, वकील या डॉक्टर भी! आज महिलाएं कई ऐसे व्यवसाय चुन रही हैं या काम कर रही हैं, जो सदियों से पुरुषों तक ही सीमित थे। तुम बता सकते हो ऐसे कुछ कामों के उदाहरण? हां, यह ज़रूर है कि ऐसे कामों में महिलाओं की संख्या अभी कम है। पर क्यों?

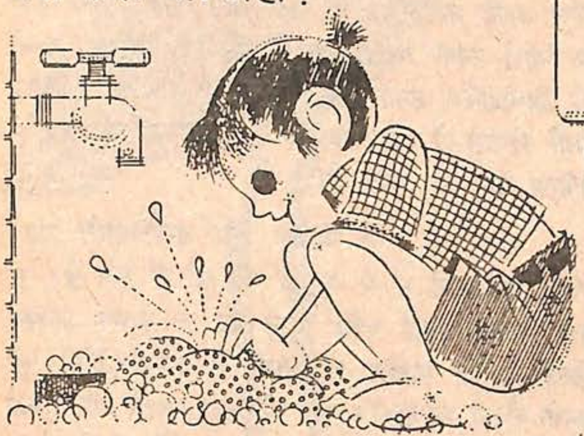
सही अवसर दरअसल लड़की को शुरू से ही नहीं मिलते। उसकी तो पैदाइश पर ही लोग अफसोस मनाते हैं, जबकि लड़का जन्मे तो दूर-दूर तक बधाईयां गूंजती हैं। जन्म से जो भेदभाव शुरू होता है, जीवन भर लड़की का पीछा नहीं छोड़ता। अनेक घरों में खाने की पौष्टिक और बढ़िया चीज़ों, जैसे दूध या फल पर लड़कों का अधिकार पहले होता है। लड़की और उसकी



हांजी हांजी नाजी ना

कमला भसीन

तुम कपड़े पहनते हो?
हांजी हांजी हांजी हां
तुम कपड़े धोते भी होगे?
नाजी नाजी नाजी ना
कपड़ों की हां, धोने की ना
ऐसे कैसे चले जहां?



तुम खाना खाते हो?
हांजी हांजी हांजी हां
तुम खाना पकाते भी हो?
नाजी नाजी नाजी ना
खाने की हां, पकाने की ना
ऐसे कैसे चले जहां?





तुम गंदा करते हो?
हांजी हांजी हांजी हां
तुम सफाई भी करते हो?
नाजी नाजी नाजी ना
गंदे की हां, सफाई की ना
ऐसे कैसे चले जहां?





चित्र : मिकी पटेल, लिखावट : प्रदीप ऐरी
(युनिसेफ की पुस्तक **धम्मक धम** से साभार)

मां के लिए तो बचा खुचा खाना ही होता है। लड़की को स्कूल भेजना भी उतना ज़रूरी नहीं समझा जाता, जितना लड़के का। और यदि लड़की स्कूल गई भी तो कुछ कक्षाओं के बाद उसकी पढ़ाई समाप्त कर दी जाती है। कारण यही कि या तो ब्याह दी जाती है या फिर घर के काम में इतनी फंसा दी जाती है कि पढ़ाई उसे निरर्थक लगने लगती है। उसे लगने लगता है उसका प्राथमिक काम तो घर संभालना है।

घर के काम में बेशक कोई बुराई तो नहीं, वह तो करना ही है। पर यदि घर के ये काम लड़के और लड़की दोनों मिलकर करें, तो फिर लड़की को वह मौके भी मिल सकें जो केवल लड़कों को मिल पाते हैं, जैसे घर के बाहर खेलकूद करना, स्कूल जाना, अन्य लोगों से मिलना, अपनी हिम्मत बढ़ाना आदि। अभी होता यही है कि एक को तो शुरू से ही तमाम बंदिशों में बांध देते हैं, उस पर ज़्यादा रोक-टोक लगाते हैं, उस पर घर के सभी काम थोप देते हैं, दुनिया भर के डर भर देते हैं। अब ऐसे में ज़ाहिर है कि उसकी

क्षमता सीमित कामों में ही उभर पाएगी। तुममें से भी कितनी लड़कियां ऐसी होंगी जिन्हें छुटपन से ही घर के कामों में मां का हाथ बंटाना पड़ा है, घर के और कामों की ज़िम्मेदारी उठानी पड़ी है। जबकि तुम्हारे भाईयों को अधिक आज़ादी मिली है, खेलकूद और मस्ती करने के लिए अधिक समय और पढ़ाई के लिए अधिक व अनुकूल अवसर भी। क्या तुम्हें कभी लगा है कि तुम भी भैया की जगह होतीं तो क्या मज़ा मारतीं।

यदि बचपन से ही लड़की और लड़कों को एक-सा पालें, एक-से अवसर दें, दोनों को सभी कामों से, समस्याओं से जूझना सिखाएं तो कोई कारण नहीं कि लड़कियां भी सभी तरह की भूमिका निभाने में सक्षम होंगी।

पर आज अधिकतर घरों में स्थिति ऐसी नहीं है। जहां बहादुर बनने की बात हो, या निडर होने की तो लड़के को ही यह सीख दी जाती है। उसे कहा जाता है, लड़कियों की तरह मत रो, तू तो बड़ा बहादुर है। लड़कियों को जोखिम वाले कामों से, बिजली से, कीड़ों से, अंधेरे से, और तमाम ऐसी चीज़ों से जिनमें एक डर होता है दूर ही रखा जाता है। यदि शुरू से ही उसको भी इन चीज़ों से लड़कों की ही तरह जूझने, उलझने दिया जाए तो पिछड़ने का कोई कारण नहीं।

हमारे देश में स्कूल जाने वाली लड़कियों की संख्या बहुत कम है। पर जब भी उन्हें अवसर और अनुकूल माहौल मिला है वे लड़कों से बीस ही रही हैं। अचरज की बात है कि अन्य देशों की तुलना में हमारे देश में अधिक लड़कियां विज्ञान और इंजीनियरिंग पढ़ने के लिए जाती हैं। हमारे देश में उच्च शिक्षा के स्तर पर भी इंजीनियरिंग या तकनीकी शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियों में लड़कियों की संख्या 45% से अधिक है। जबकि रूस या इंग्लैंड में कम ही है। फिर ऐसा क्यों है कि वैज्ञानिक, इंजीनियर या अन्य शोध क्षेत्रों में लड़कियां, लड़कों के मुक़ाबले कम ही आती हैं। शायद ऐसा इसलिए होता है कि कालेज में बी.एस-सी., एम.एस-सी. कर लेने के बाद उन्हें आगे पढ़ने और शोध आदि का मौका ही नहीं मिल पाता। वजह वही कि पहले उनका ब्याह होता है और फिर परिवार, बच्चों की ज़िम्मेदारियां उनका रास्ता रोकती हैं। शायद इसीलिए हमारे दिमाग़ में एक वैज्ञानिक या इंजीनियर के रूप में महिला कम ही आती है!

ख़ैर इन सभी विज्ञान और इंजीनियरिंग पढ़ने वाली महिलाओं में से अख़्तर की मां भी एक हैं। पर उन्हें अपनी पढ़ाई जारी रखने का न केवल अवसर मिला, बल्कि माहौल भी, तभी वे अपनी ट्रेनिंग पूरी करके नौकरी कर सकीं। ब्याह भी हुआ, अख़्तर और उसकी नन्ही बहन सबीहा भी पैदा हुई, पर उन्होंने अपनी नौकरी नहीं छोड़ी। अख़्तर के अब्बा वकील हैं। बहुत व्यस्त रहते हैं। पर घर का काम भी करते हैं। खाना पकाना, कपड़े या बर्तन धोना, बच्चों को तैयार करना, जैसे हर काम में उनकी भागीदारी रहती है। अख़्तर भी घर के सभी काम सीख रहा है ताकि आगे चलकर वह भी अब्बा जैसी भूमिका निभाएगा।

☐ अनीता रामपाल

इस लेख को पढ़कर तुम्हारे मन में भी कुछ सवाल, विचार घुमड़ रहे हों तो उन्हें लिख डालो। तुम्हारे घर में, अपने आसपास क्या तुम ऐसे अंतर महसूस करते हो, उनके बारे में भी लिखो। चुने हुए पत्र चकमक में प्रकाशित किए जाएंगे।

–संपादक



सारस



दुनिया पक्षियों की श्रृंखला में इस बार एक ऐसे पक्षी से परिचय प्राप्त करो जो हमारे देश के सबसे बड़े पक्षियों में से एक है। यह है सारस। इसकी ऊंचाई 4 से 5 फीट (लगभग डेढ़ मीटर) होती है। लाल सिर और गुलाबी टांगों को छोड़कर इसका सारा शरीर भूरे (राख के) रंग का होता है। नर और मादा का रंग रूप समान होता है।

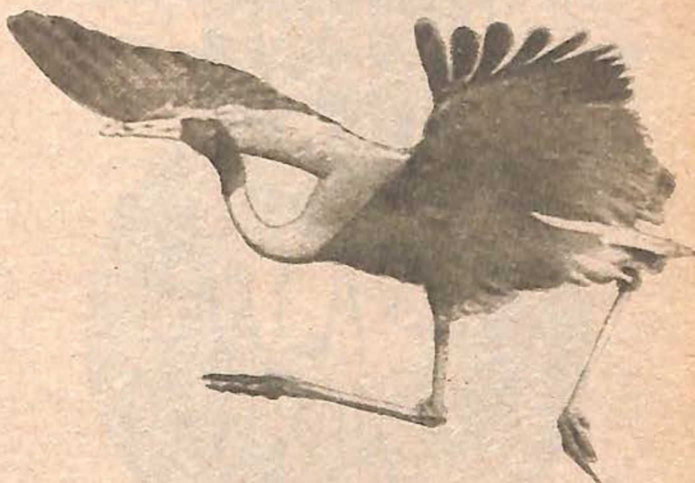
सारस पानी के आसपास रहना पसंद करते हैं। इनका सबसे प्रिय भोजन मछली है, किंतु ये बहुत सारी अन्य चीजें जैसे बीज, छोटे-छोटे पौधे, कीड़े, सांप, मेंढक, गिरगिट आदि खा लेते हैं। सारस प्रायः ज़मीन पर या पानी में ही रहते हैं, कभी-कभी काफी ऊंचाई पर उड़ते हुए भी देखे जा सकते हैं। जब ये एक-दूसरे को पुकारते हैं तब इनकी बिगुल के समान तेज़ आवाज़ दूर तक सुनाई पड़ती है।

सारस के बारे में यह मान्यता है कि नर और मादा हमेशा साथ रहते हैं और यदि जोड़े में से एक पक्षी की मृत्यु हो जाती है, तो दूसरा पक्षी भी प्राण छोड़ देता है। इस धारणा के कारण आमतौर पर लोग इसका शिकार नहीं करते हैं। शायद इसी वजह से सारस निडरता के साथ घूमते रहते हैं।

सारस का प्रजनन काल जुलाई से दिसंबर तक होता है। मौसम की शुरूआत में नर और मादा पंख फैलाकर एक-दूसरे के सामने खूब नाचते, कूदते और शोर मचाते हैं। फिर वे मिलकर किसी धान के खेत या तालाब के पानी में एक टीला बनाकर उस पर पानी के पौधों से एक बड़ा घोंसला बनाते हैं। इस घोंसले में मादा दो अंडे देती है।

बादशाह जहांगीर की पक्षियों में बड़ी रुचि थी। उसने सारस के एक जोड़े का लगातार कई दिनों तक अवलोकन किया। उसने लिखा है कि मादा ने पहले एक अंडा दिया और उसके दो दिन बाद दूसरा। अंडों से बच्चे निकलने में चौंतीस दिन लगे।

नर और मादा दोनों मिलकर अंडों को सेने और उनकी रक्षा करने का काम करते हैं। इनके घोंसले के पास यदि कुत्ता, गाय, भैंस आदि कोई बड़ा जंतु भी आता है, तो ये उस पर हमला कर देते हैं और अपनी



खंजर के समान चोंच से गंभीर चोट पहुंचा सकते हैं। यदि सारस के जोड़े को बचपन से पाला जाए तो ये चौकीदारी का काम बड़ी मुस्तैदी से करते हैं। किंतु साथ ही यह सावधानी भी बरतनी पड़ती है कि ये किसी को गंभीर रूप से घायल न कर दें।

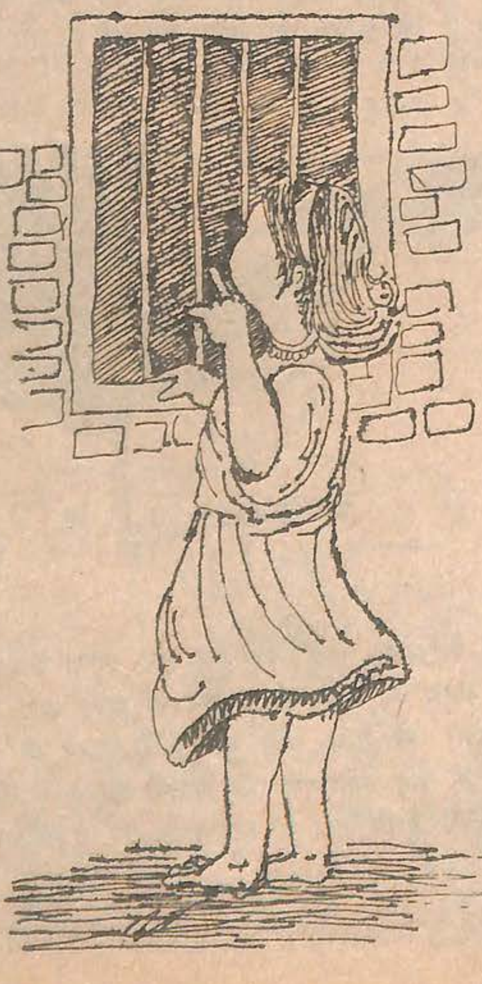
☐ अरविंद गुप्ते

(चित्र सौजन्य : बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी)

आकाश की छतरी में छेद

मुनिया आज कुछ चुप-सी है। चुप का मतलब उदास नहीं है। जिसको हम बड़े उदास कहते हैं, वह तो मुनिया को आता ही नहीं है। लेकिन कब तक बचेगी, एक न एक दिन तो बड़े लोग उसे उदास होना सिखा ही लेंगे।

हां, बात हो रही थी उसकी चुप्पी की। अब भला मुनिया को कौन चुप रख सकता है। उसके मां-बाप ने तो यह प्रयास छोड़ ही दिया है। लेकिन अजीब बात है, वही मां-बाप जो मुनिया को हमेशा कहते थे कि तुम सारे दिन चटर-पटर करती रहती हो उसे चुप देखकर परेशान हैं। मां ठहरी स्कूल की मास्टर, कुछ भी कहो, बच्चों से तो वह प्यार करती ही हैं। माना बाहर से डांट-डपट करना उनकी आदत है। पिता जी रेल्वे इंजन ड्रायवर हैं, सो हमेशा ही घर से बाहर रहते हैं। जब घर लौटते हैं तो मुनिया की चटर-पटर के बिना उन्हें अच्छा नहीं लगता। फिर भी मां-बाप, दोनों ही अपने काम में इतने उलझे हैं कि मुनिया की चुप्पी तोड़ने की कोई पहल नहीं कर पा रहे हैं।



तभी आ टपकी सुनीला, मुनिया की मां की सहेली जो हाईस्कूल में विज्ञान पढ़ाती हैं। उन्हें देखते ही मुनिया की उदासी काफूर हो गई। आंखों की चमक वापस आ गई। मुनिया, मौसी-मौसी कहकर सुनीला की ओर लपकी और झट से बिना नमस्ते-वमस्ते किए उबल पड़ी, "मौसी यह ओज़ोन क्या है?"

"अरे, आते देर नहीं और इम्तहान शुरू," सुनीला कुछ हड़बड़ाकर बोली, "क्यों तुम्हें क्या ज़रूरत आन पड़ी जानने की?"

"वो ऐसा है मौसी, कल टेलीविज़न पर कुछ आ रहा था ओज़ोन के बारे में। लेकिन मुझे समझ में नहीं आया। इसलिए सुबह से ही कुछ अच्छा नहीं लग रहा है।"

"हूं, तो यह बात है।" सुनीला और मुनिया की अम्मी दोनों ने एक साथ कहा। अम्मी ने राहत की सांस ली। वो तो सोच रही थीं कि इसकी तबियत ठीक नहीं है।

"अच्छा, सुनीला तुम संभालो इसे, मैं चाय बनाकर लाती हूं।" अम्मी ने कहा।

"तो क्या सुना तुमने टी.वी. पर," सुनीला ने बैठते हुए पूछा।

"यही कि आसमान में छेद हो रहा है, जिससे पृथ्वी पर बहुत नुकसान होगा... **ओज़ोन** भी इसमें शामिल है... सच मौसी मैं बहुत परेशान हूं। भला आसमान में छेद कैसे हो सकता है? और यह शैतान ओज़ोन क्या चीज़ है?"

हालांकि सुनीला को भी पूरी जानकारी नहीं थी। फिर भी वह इस विषय के बारे में प्रायः अख़बारों, पत्रिकाओं में पढ़ती रहती थी। वह बोली, "देखो इस सबका संबंध पूरे संसार में बढ़ते हुए प्रदूषण से है।"

"प्रदूषण से... वह कैसे?" मुनिया चिल्लाई।

"अब तुम चुपचाप सुनो?" सुनीला ने मुस्कराकर डांटा, यह जानते हुए कि उसे चुप रखना आसान काम नहीं है।

"तुमने कभी सोचा है कि जीवन पृथ्वी पर ही

क्यों है, अन्य ग्रह जैसे शुक्र, मंगल या शनि पर क्यों नहीं?"

"हां, मैंने चकमक में ही पढ़ा था, कि इन ग्रहों पर ज़हरीली गैसें हैं, तापमान बहुत अधिक या फिर बहुत कम है, और ऑक्सीजन भी नहीं है, जो जीवन के लिए बहुत ज़रूरी है।"

"कितने ध्यान से पढ़ती है इस छोटी उमर में भी," सुनीला ने मन ही मन सोचा और बोली, "तो यही बात ध्यान देने की है। पृथ्वी पर जीवन संभव है क्योंकि वातावरण इसके अनुकूल है। इस वातावरण में प्राणवायु ऑक्सीजन मौजूद है और बहुत कम मात्रा में ऐसी गैसें हैं जो पृथ्वी के वातावरण और तापमान को प्रभावित कर सकती हैं। और सारा जीवन तो भोजन पर आधारित है, और भोजन है हमारी वनस्पति। इस भोजन को बनाने के लिए सूर्य की रोशनी उतनी ही ज़रूरी है जितनी सांस के लिए ऑक्सीजन।"

"हां, यह तो मालूम है।"

"अब समझने की बात यह है कि सूर्य की रोशनी के साथ हानिकारक प्रकाश तरंगें भी आती हैं—इन्हें **पराबैंगनी (अल्ट्रावायलेट) प्रकाश तरंगें** कहते हैं। अगर ये पृथ्वी पर पहुंच जाएं तो पृथ्वी पर जीवन नष्ट हो सकता है।"

"तो वह क्यों नहीं पहुंचती?" मुनिया से रहा नहीं गया।

"ओज़ोन ही रोकती है इसे। ओज़ोन एक प्रकार की ऑक्सीजन है। ऑक्सीजन में दो परमाणु होते हैं और उसे हम रसायन शास्त्र की भाषा में O_2 से दर्शाते हैं। ओज़ोन का सूत्र है O_3 यानि ऑक्सीजन के तीन परमाणु। ओज़ोन वायुमंडल के बाहरी हिस्से में बनती है। पराबैंगनी प्रकाश तरंगें जब वायुमंडल के ऊपरी हिस्से पर पड़ती हैं तो वह ऑक्सीजन को तोड़कर (विघटन की प्रक्रिया से) ओज़ोन पैदा करती हैं, और यही ओज़ोन पराबैंगनी प्रकाश तरंगों को सोख लेती है, पृथ्वी तक पहुंचने ही नहीं देती।"

"तो मौसी, यह छेद की बात कहां से आई?"

"ओज़ोन की यह जो परत है न, बहुत ही पतली है। सबसे पहले 1970 में वैज्ञानिकों ने लोगों का ध्यान इस ओर खींचा कि ओज़ोन की यह परत खतरे में है। उस समय कारण बताया गया था—तेज़ गति से चलने वाले हवाई जहाज़ों से छोड़ा गया, **नाइट्रोजन ऑक्साइड**। लेकिन 1974 में पाया गया कि मुख्य कारण मानव निर्मित ऐसे रसायन हैं जिन्हें **सीएफसी** से जाना जाता है।"

"सीएफसी माने।"

"**क्लोरोफ्लोरो कार्बन**—कुछ उल्टा-पुल्टा लंबा-सा नाम है।"

"अच्छा आप तो यह बताइए ये करते क्या हैं?"

"तुम भी हवाई जहाज़ की रफ़्तार से सवाल पूछ रही हो, ज़रा सब्र करो। पहले ओज़ोन छेद क्या है यह तो समझ लो..."

"अरे हां, मैं तो भूल ही गई थी...।"

"1985 में ऐसे तथ्य सामने आए जिनसे पता चला कि अंटार्कटिक के ऊपर ओज़ोन परत न के बराबर रह गई है। ऐसा लगता है जैसे वहां छेद बन गया है। और उसमें से पराबैंगनी प्रकाश तरंगें पृथ्वी पर पहुंच सकती हैं।"

"मौसी क्या यह वही अंटार्कटिक है जिसके बारे में पिछली चकमक में इतना कुछ लिखा गया है?"

"हां भई, वही है। दक्षिणी ध्रुव पर हर बसंत के मौसम में यह छेद ज़्यादा गहरा व बड़ा होता जा रहा है।"

"तो क्या यह बढ़ता ही रहेगा। इसका कोई



***यह** चित्र उपग्रह द्वारा खींचे गए एक फोटो के आधार पर बनाया गया है। अंटार्कटिक पर हर बसंत के मौसम में ओज़ोन की परत में बनने वाला छेद ज़्यादा गहरा दिखाई देता है। इस चित्र में यह दिखाया गया है कि ओज़ोन की परत कहां-कहां पर पतली हो गई है। जहां सबसे अधिक सफ़ेद हिस्सा दिखाई दे रहा है, वहां ओज़ोन परत लगभग न के बराबर है।*

इलाज नहीं है।'' मुनिया ने परेशान होने के भाव चेहरे पर लाते हुए पूछा। मुनिया कुछ सोचने लगी।

''पहले तो यह समझना होगा कि यह छेद बनता कैसे...''

''मौसी... मौसी... पहले यह बताओ कि यह छेद अंटार्कटिक के ऊपर ही क्यों बना, कहीं और क्यों नहीं?'' बात काटते हुए मुनिया फिर उछल पड़ी।

''ओ हो... तुम तो मशीनगन की तरह सवाल पूछती हो। बताऊंगी, पहले सुनो कि छेद कैसे बनता है।''

''अच्छा बताओ।''

''अब तो इस बात पर सहमति है कि इसका कारण मानव निर्मित वे रसायन हैं, जिनमें **क्लोरीन व ब्रोमीन** रहता है। खासकर **सीएफसी** व **हेलान** नाम के रसायन। ऐसा अनुमान है कि ओज़ोन छेद 1970 से बनना शुरू हुआ। उस समय वायुमंडल में क्लोरीन की कितनी मात्रा थी, जानती हो...?''

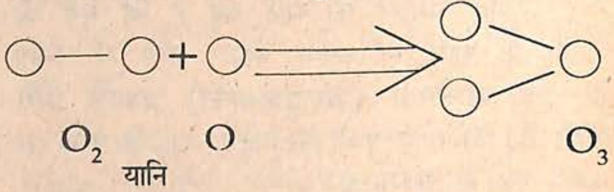
''नहीं।''

''एक अरब हवा के अणुओं में दो क्लोरीन परमाणु! मतलब जब हवा में इस मात्रा में क्लोरीन के परमाणु थे तो ओज़ोन में कमी आनी शुरू हो गई। और आज 1990 में यह मात्रा हो गई है, तीन क्लोरीन परमाणुओं की, यानि डेढ़ गुना।

अब देखते हैं कि सीएफसी से क्या होता है। ये रसायन 1930 से इस्तेमाल होना शुरू हुए। इनकी खूबी यह है कि ये न तो ज्वलनशील हैं और न आसानी से इनका विघटन होता है। ये भी माना गया है कि ये रसायन ज़हरीले नहीं हैं इनका ज़्यादा इस्तेमाल फ्रिज़, पेन्ट, आग बुझाने के यंत्र इत्यादि में होता है। इनका **ऐरोसॉल** रूप ज़्यादा प्रचलित है। ऐरोसॉल रसायनों को विशेष प्रकार के डिब्बों में दाब के साथ बंद किया जाता है। डिब्बे में लगे बटन को दबाने पर ये रसायन एक छोटे से छिद्र से गैस (स्प्रे) के रूप में बाहर आते हैं। चूंकि इनका विघटन आसानी से नहीं होता है, इस कारण ये वायुमंडल में लंबे समय तक बने रहते है। लेकिन आहिस्ता-आहिस्ता ये वायु मंडल की ऊपरी परत के करीब पहुंच जाते हैं। वहां पराबैंगनी प्रकाश तरंगों के संपर्क में आने पर इनका विघटन हो जाता है और इनमें से क्लोरीन के परमाणु अलग हो जाते हैं। क्लोरीन के अणु ओज़ोन से क्रिया करके उसे नष्ट कर देते हैं।''

''मौसी बात बनी नहीं... कुछ और साफ़ करो।''

''अच्छा कोशिश करती हूं,'' सुनीला ने पास में पड़ी कॉपी-पेंसिल उठा ली और बोली, '' देखो वायुमंडल की ऊपरी परत में ओज़ोन यूं बनता है—



यानि

ऑक्सीज़न का अणु + ऑक्सीजन का परमाणु = ओज़ोन

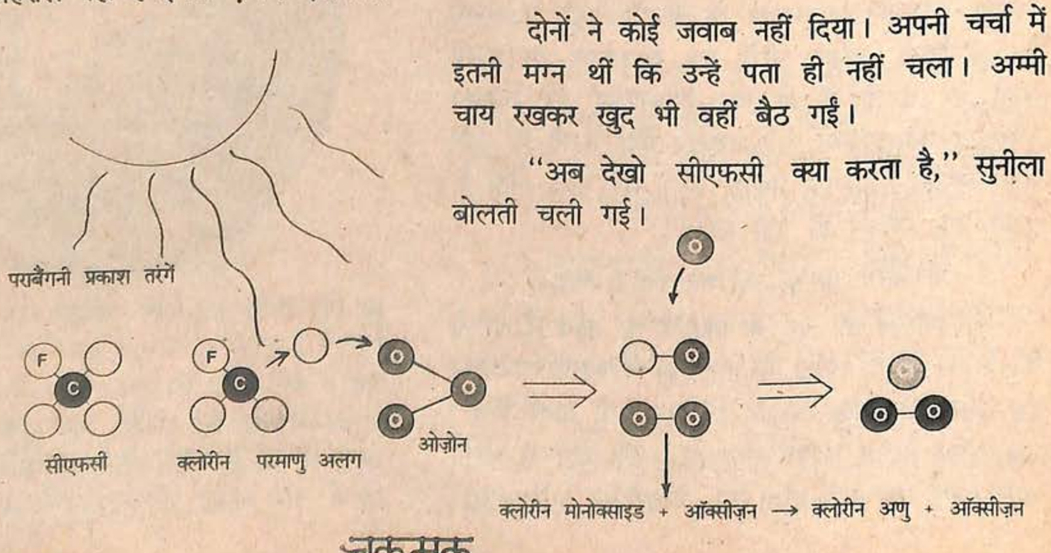
''ठीक, आया समझ में?''

''हां, मौसी, यह तो समझ में आया।''

इस बीच मुनिया की अम्मी चाय लेकर आ गईं, ''लो भई चाय पियो, थोड़ी देर हो गई बनाने में।''

दोनों ने कोई जवाब नहीं दिया। अपनी चर्चा में इतनी मग्न थीं कि उन्हें पता ही नहीं चला। अम्मी चाय रखकर खुद भी वहीं बैठ गईं।

''अब देखो सीएफसी क्या करता है,'' सुनीला बोलती चली गई।



पराबैंगनी प्रकाश तरंगों से सीएफसी रसायन का क्लोरीन अलग हो जाता है जो ओज़ोन से क्रिया करके उसे क्लोरीन मोनोक्साइड व ऑक्सीजन में बदल देता है। क्लोरीन मोनोक्साइड एक अस्थिर अणु है जो ऑक्सीजन से क्रिया करके क्लोरीन के परमाणु को मुक्त कर देता है। क्लोरीन का परमाणु मुक्त होते ही ओज़ोन के दूसरे परमाणु से क्रिया करता है। यह प्रक्रिया ऐसे ही चलती रहती है। इस प्रकार क्लोरीन का एक परमाणु 1,00,000 ओज़ोन के अणुओं का नाश कर सकता है।''

''सच्ची मौसी बहुत ही ख़तरनाक रसायन है सीएफसी ! अब समझ में आया।'' आंखों में समझ की चमक लेकर मुनिया बोली!

''अरे भई तुम्हारी चाय तो ठंडी हो गई,'' पास बैठी अम्मी ने टोका और बोली, ''सुनीला, मैं भी रसोई में कुछ-कुछ सुन रही थी तुम्हारी बातें। भई यह बताओ कि इसका ज़्यादा असर दक्षिणी ध्रुव पर ही क्यों हो रहा है?''

पास के कमरे से मुनिया के बापू की भी आवाज़ आई, ''...अरे भई हम भी सुन रहे थे... ज़रा यह भी बताओ कि रोकथाम के लिए भी कुछ हो रहा है या नहीं?''

''बापू अगर इतनी ही रूचि है तो यहां आओ न, अपने कमरे में क्या कर रहे हो,'' मुनिया ने ऊंचे स्वर में कहा।

बापू जैसे बुलावे का इंतज़ार ही कर रहे थे, आकर बैठ गए। इस बीच सुनीला ने ठंडी हो गई चाय, पानी की तरह पी डाली।

''यह तो गनीमत है कि ओज़ोन की परत पर अधिक असर अंटार्कटिक में ही हुआ है,'' सुनीला ने अपनी बात आगे बढ़ाई, ''जैसा हम जानते हैं कि अंटार्कटिक में कोई आबादी नहीं है। परत को नुकसान पहुंचने का कारण यह है कि वहां ऊपरी वायुमंडल में बर्फ़ के बहुत ही छोटे-छोटे कण रहते हैं। इन कणों की उपस्थिति में क्लोरीन और ओज़ोन के बीच होने वाली क्रिया और तेज़ी से होती है। लेकिन ऐसा नहीं है कि ओज़ोन के घटने की क्रिया केवल दक्षिण ध्रुव पर ही हो रही है। 1989 में वैज्ञानिकों ने उत्तरी ध्रुव के ऊपर भी वैसी ही रसायनिक परिस्थिति पाई, जैसी कि दक्षिणी ध्रुव पर है। फ़र्क शायद यह है कि अंटार्कटिक के मुकाबले आर्कटिक के ऊपर मौसम तेज़ी से बदलता रहता है। इसलिए वहां लंबे समय तक छेद बने रहने की संभावना कम है। वहां ठंड के महीनों में ओज़ोन में 3 से 5 प्रतिशत कमी पाई गई है। मतलब यह है कि ओज़ोन की मात्रा में कमी तो लगातार हो रही है, लेकिन वायुमंडल में मौसम के फ़र्क के कारण सबसे ज़्यादा असर अंटार्कटिक में हो रहा है।

एक और बात, इसके लिए केवल सीएफसी ही ज़िम्मेदार नहीं है, क्लोरीन, ब्रोमीन वाले अन्य रसायन जैसे मिथाइल क्लोरोफार्म, कार्बन टेट्राक्लोराइड आदि से भी वायुमंडल में क्लोरीन की मात्रा बढ़ रही है। ब्रोमीन युक्त हेलोन, जो आग बुझाने में इस्तेमाल होता है, ओज़ोन को क्लोरीन से भी ज़्यादा तेज़ी से नष्ट करता है।''

सुनीला ने थोड़ी थकान सी महसूस की, वह जैसे सांस लेने के लिए रुकी।



"मौसी... एक बात और बताओ, बस आज का आख़री सवाल...," मुनिया को भी लगा कि मौसी थक गई है, "अगर ओज़ोन की परत में छेद बढ़ता ही गया. तो इसका क्या असर होगा?"

सुनीला ने तिरछी नज़र से मुनिया को देखा तो मुनिया बोल पड़ी, "फिर मैं आपको अपने हाथ से चाय बनाकर पिलाऊंगी। अम्मी ने जो बनाई थी, वो तो वैसे भी शर्बत हो गई थी।"

"अरे वाह, इससे बढ़िया इनाम मेरे लिए क्या होगा।" सुनीला ने मुनिया की पीठ पर धौल जमाई और आगे बोलना शुरू किया, "सूर्य से आने वाली पराबैंगनी प्रकाश तरंगें हमारे शरीर पर असर डालती हैं। कुछ असर फ़ायदेमंद हैं लेकिन कुछ हानिकारक। वास्तव में ये प्रकाश तरंगें तीन तरह की हैं। समझने के लिए हम इन्हें **क**, **ख** और **ग** कह सकते हैं। इनमें से **ग** को वायुमंडल सोख लेता है। लेकिन **क** और **ख** क़िस्म की कुछ प्रकाश तरंगें पृथ्वी तक पहुंचती हैं। **क** क़िस्म की प्रकाश तरंगें त्वचा में विटामिन-डी के निर्माण में सहायता करती हैं। किंतु **ख** क़िस्म की तरंगों से सूर्य जलन, हिम अंधापन, मोतियाबिंद, चमड़ी का सिकुड़ना व चमड़ी का कैंसर संभव है। आमतौर पर पहाड़ों पर पड़ने वाली तेज़ धूप में ये प्रकाश तरंगें कुछ अधिक मात्रा में होती हैं। वहां पर अगर त्वचा ढकी न हो तो कुछ ही दिनों में काली पड़कर उखड़ने लगती है—इसे हम सूर्य जलन कह सकते हैं। पहाड़ों की चोटी पर ज़मी हुई बर्फ़ को अगर लगातार निहारा जाए, तो हिम अंधेपन की संभावना रहती है। यह ग़ौर करने की बात है कि जब से अंटार्कटिक में ओज़ोन छेद का पता चलता है, लगभग तभी से दक्षिण ध्रुव के सबसे क़रीब बसी आबादी (आस्ट्रेलिया) में चमड़ी कैंसर भी अधिक देखने को मिला है।

ख क़िस्म की तरंगें भी शरीर की उस प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं जो हमें बीमारियों से बचाए रखती है। ख़ासकर त्वचा की सुरक्षा करने वाली प्रक्रियाओं को। त्वचा की कई बीमारियां जैसे खसरा, माता, हरपीस आदि पराबैंगनी प्रकाश से बढ़ जाती हैं, ऐसा पाया गया है। इनके प्रभाव से आंखों में मोतियाबिंद जैसी ख़तरनाक बीमारियां हो सकती हैं, जिससे आदमी अंधा भी हो सकता है।"

"सुनीला, क्या सिर्फ़ मानव ही प्रभावित होता है इससे?" मुनिया की अम्मी ने पूछा।



"नहीं, वनस्पति तथा समुद्रीय जीवन भी प्रभावित होता है। पर इन पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में अधिक जानकारी नहीं है। हां, प्रयोगों से यह पता चला है कि पौधों की वृद्धि पर विपरीत असर पड़ता है, शायद प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया गड़बड़ाने के कारण। कुल मिलाकर यह कह सकते हैं कि अगर इस ओज़ोन के विनाश पर काबू नहीं पाया गया तो पूरी पृथ्वी का जीवन अस्त-व्यस्त हो जाएगा।"

"तो रोकने के लिए क्या किया जा रहा है?" मुनिया के बापू ने अपना सवाल फिर पूछा।

"एक बात तो साफ़ है, ओज़ोन छेद करने वाले रसायन ज़्यादातर विकसित देशों की देन हैं," सुनीला ने कहा, "सीएफसी को ही लें। कुल खपत का 35% अमेरिका व 32% पश्चिमी यूरोप में इस्तेमाल होता है। जबकि पूरे एशिया, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, पूर्वी यूरोप व लेटिन अमेरिका में कुल 33% इस्तेमाल होता है।यानि विकसित देशों में ही सीएफसी की खपत का लगभग 2/3 हिस्सा इस्तेमाल होता है। अगर विकासशील देश भी विकसित देशों जितना सीएफसी इस्तेमाल करने लगें तो पृथ्वी पर जीवन नष्ट होना एक प्रकार से तय है।

इसीलिए मॉन्ट्रियल (कनाडा) में दुनिया भर के देशों की बैठक में एक समझौता किया गया है। इसके अंतर्गत यह माना गया है कि सीएफसी का इस्तेमाल धीरे-धीरे समाप्त किया जाना चाहिए। लेकिन इस समझौते का सारा दारोमदार विकसित देशों पर ही है। दूसरी तरफ सीएफसी के विकल्प तलाश करने के लिए भी शोध हो रहा है। कोशिश यह है कि विकल्प ऐसा हो जो ओज़ोन पर असर न डालता हो..।"

"लेकिन मौसी क्या मालूम वह विकल्प किसी और चीज़ को प्रभावित करे, जैसे 1930 में सीएफसी का इस्तेमाल शुरू करते वक़्त किसे पता था!" मुनिया ने अपनी शंका रखी!

"बात तो सही है, विकास के रास्ते में यह एक सवाल है। अब जिन चीज़ों में सीएफसी इस्तेमाल होता है, वह आम आदमी की पहुंच और जीवन से कोसों दूर हैं, जैसे फ्रिज़, ऐरोसोल, स्प्रे, पेंट आदि। लेकिन जीवन तो उनका भी ख़तरे में पड़ रहा है, वह किसकी दुहाई दें!"

और माहौल में एक अज़ीब-सी उदासी छा गई। मुनिया, सुनीला, अम्मी और बापू सब चिंतित से सिर झुकाकर बैठ गए। सब परेशान थे कि उनके जीवन पर असर डाला जा रहा है, लेकिन वे इसे रोकने में असहाय हैं!

और तुम... तुम्हें क्या लगता है। ओज़ोन के छेद से तुम दूर नहीं हो। इसका असर तो तुम पर भी पड़ रहा है। क्या कर सकते हैं भला... इसे रोकने के लिए! पत्र लिखकर बताओगे न!

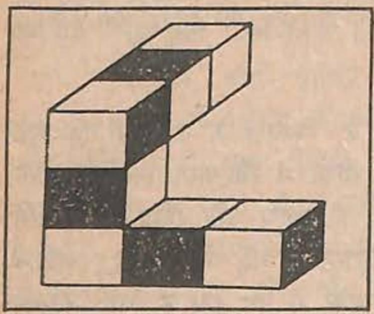
☐ विनोद रायना



सभी चित्र : धनंजय भोपाल

दर्पण के संग खेलो

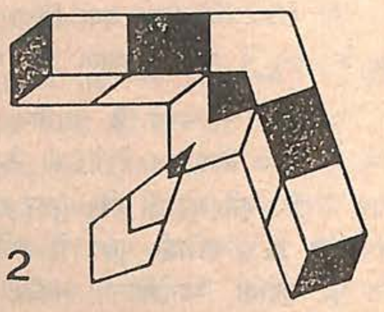
एक छोटा दर्पण या उसका टुकड़ा लो और **मास्टर चित्र** के पास रखकर उसका प्रतिबिंब देखो। प्रतिबिंब और मास्टर चित्र को मिलाकर एक नया चित्र बनता है। यहां दिए अन्य चित्र ऐसे ही बने हैं। दर्पण को थोड़ा आगे-पीछे खिसकाकर, तिरछा करके रखो और तुम भी बनाने की कोशिश करो!



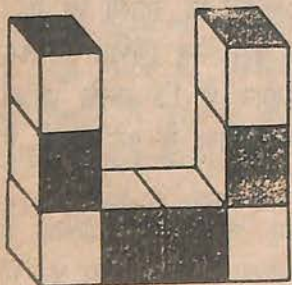
मास्टर चित्र



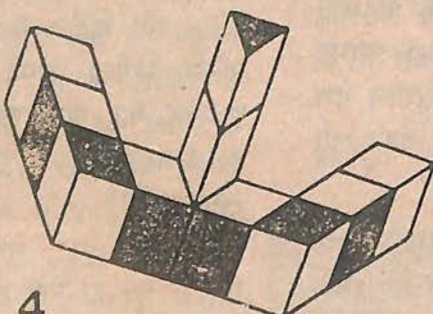
1



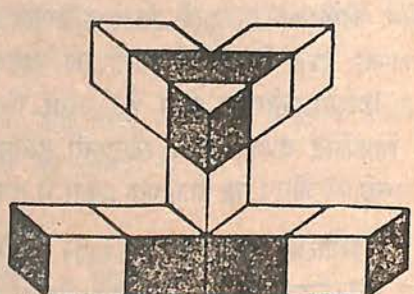
2



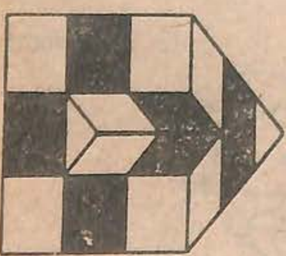
3



4



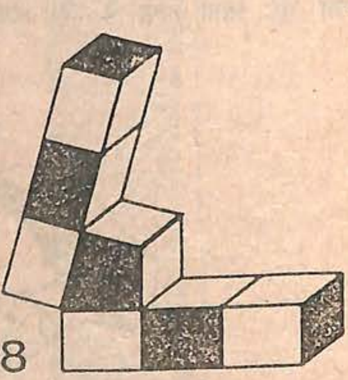
5



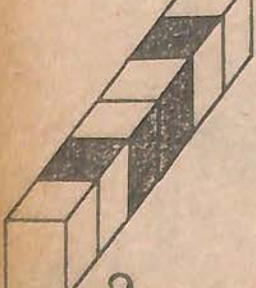
6



7



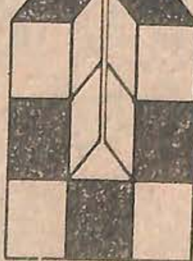
8



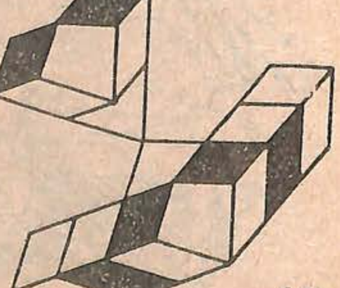
9



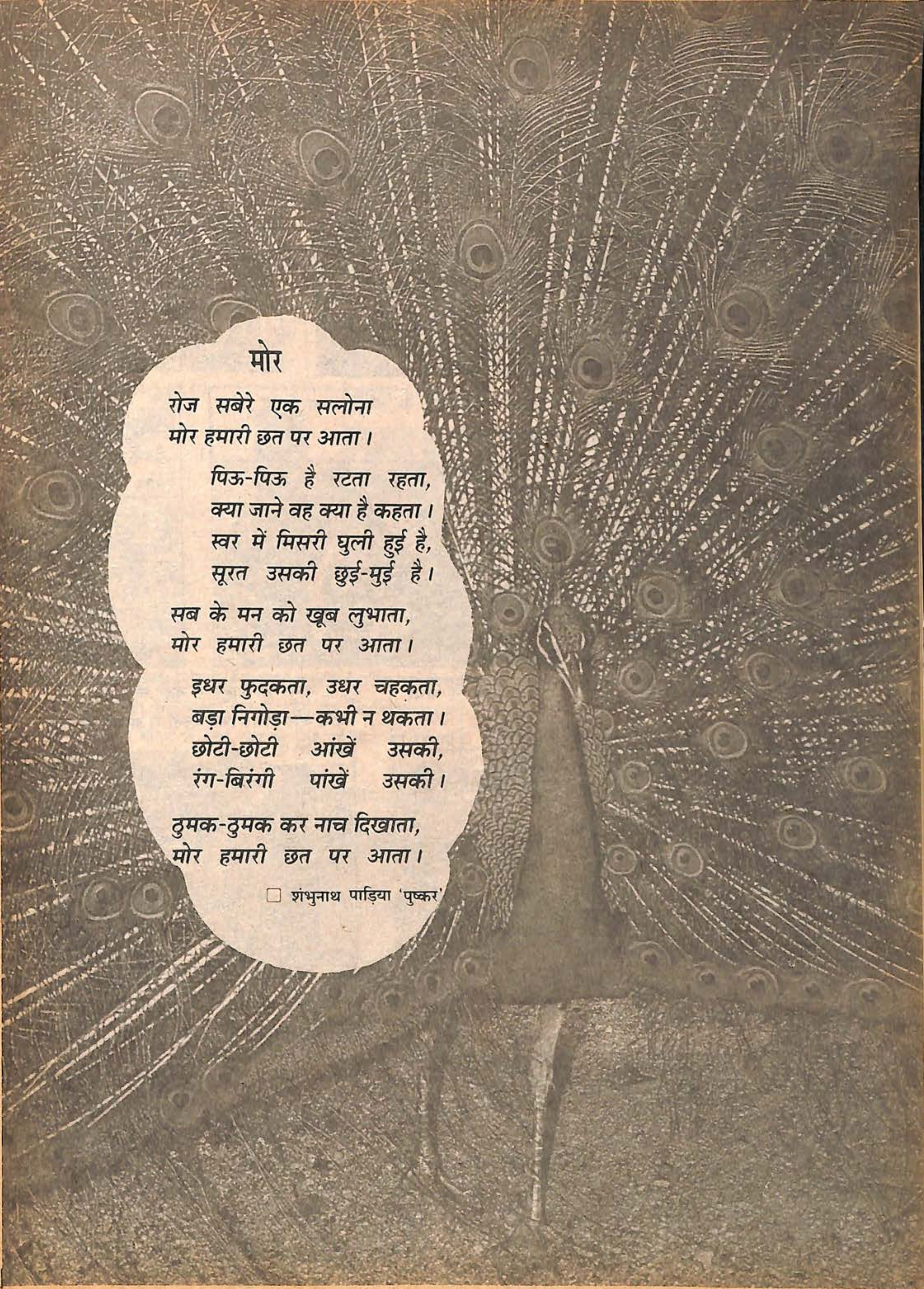
10



11



12



मोर

रोज सबेरे एक सलोना
मोर हमारी छत पर आता।

पिऊ-पिऊ है रटता रहता,
क्या जाने वह क्या है कहता।
स्वर में मिसरी घुली हुई है,
सूरत उसकी छुई-मुई है।

सब के मन को खूब लुभाता,
मोर हमारी छत पर आता।

इधर फुदकता, उधर चहकता,
बड़ा निगोड़ा—कभी न थकता।
छोटी-छोटी आंखें उसकी,
रंग-बिरंगी पांखें उसकी।

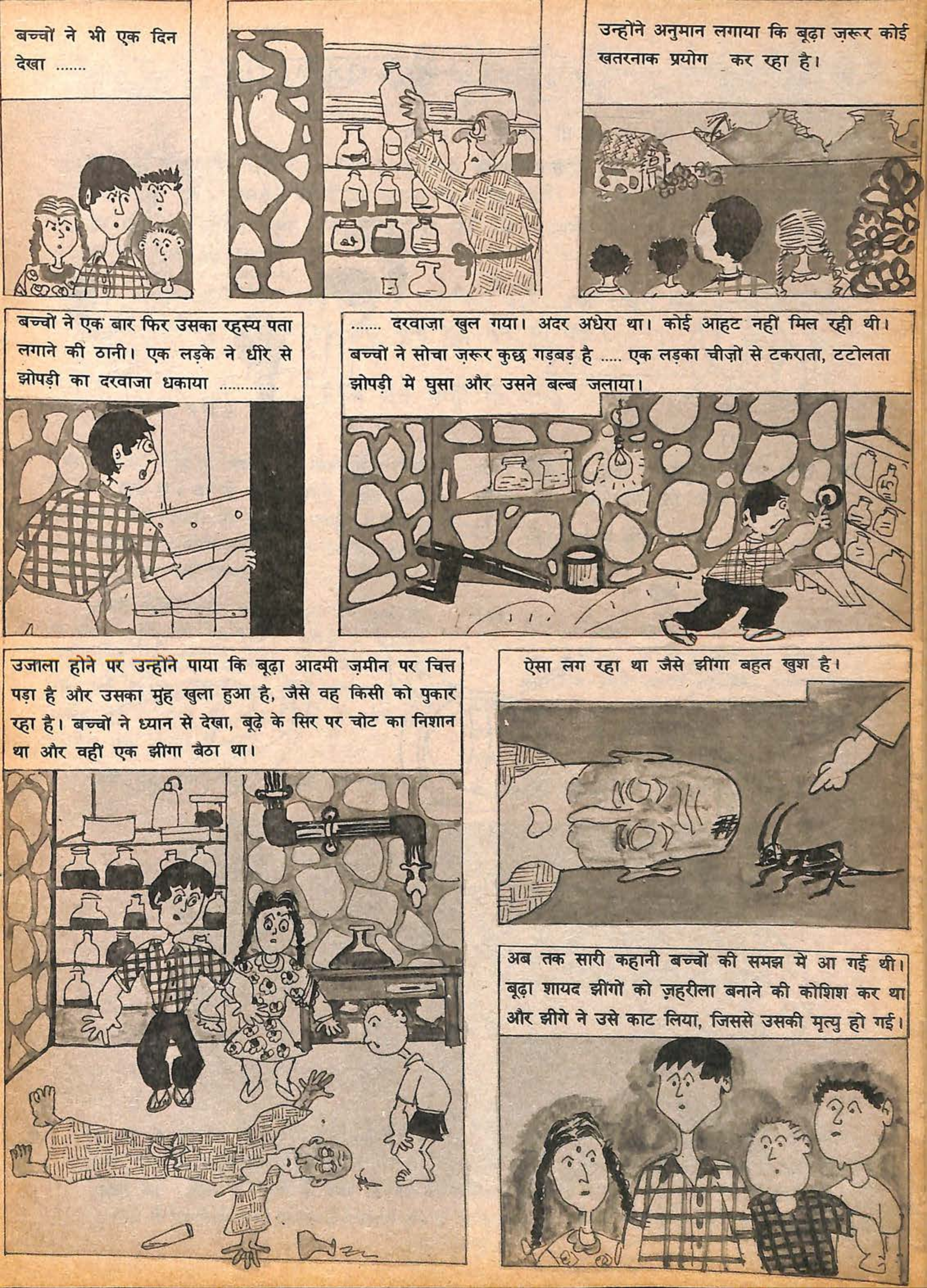
ठुमक-ठुमक कर नाच दिखाता,
मोर हमारी छत पर आता।

□ शंभुनाथ पाड़िया 'पुष्कर'

ज़हर फैलाओ, खुद मर जाओ

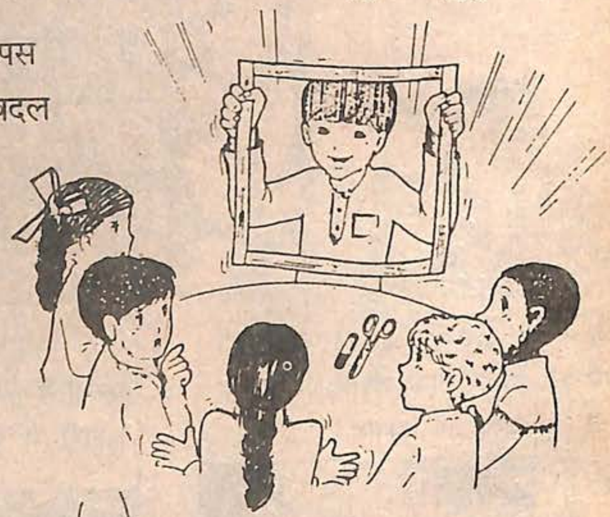
चित्र : शिवेंद्र पाडिया
मूल कथा : रेखा भार्गव
शब्द : राजेश उत्साही

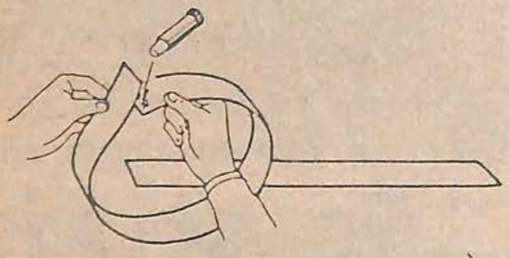



बच्चों ने भी एक दिन देखा ....
उन्होंने अनुमान लगाया कि बूढ़ा ज़रूर कोई खतरनाक प्रयोग कर रहा है।
बच्चों ने एक बार फिर उसका रहस्य पता लगाने की ठानी। एक लड़के ने धीरे से झोपड़ी का दरवाजा धकाया ....
.... दरवाज़ा खुल गया। अंदर अंधेरा था। कोई आहट नहीं मिल रही थी। बच्चों ने सोचा ज़रूर कुछ गड़बड़ है ..... एक लड़का चीज़ों से टकराता, टटोलता झोपड़ी में घुसा और उसने बल्ब जलाया।
उजाला होने पर उन्होंने पाया कि बूढ़ा आदमी ज़मीन पर चित्त पड़ा है और उसका मुंह खुला हुआ है, जैसे वह किसी को पुकार रहा है। बच्चों ने ध्यान से देखा, बूढ़े के सिर पर चोट का निशान था और वहीं एक झींगा बैठा था।
ऐसा लग रहा था जैसे झींगा बहुत खुश है।
अब तक सारी कहानी बच्चों की समझ में आ गई थी। बूढ़ा शायद झींगों को ज़हरीला बनाने की कोशिश कर था और झींगे ने उसे काट लिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई।

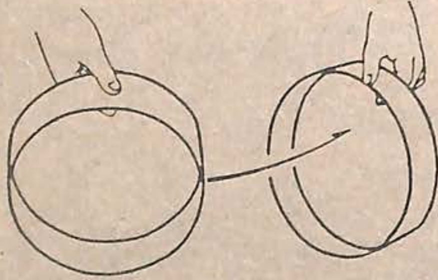
खेल काग़ज़ का

क्या तुम काग़ज़ की पट्टी से बने दो छल्लों को आपस में जोड़कर, सिर्फ़ कैंची की मदद से एक चौकोर में बदल सकते हो? आओ हम बताते हैं!

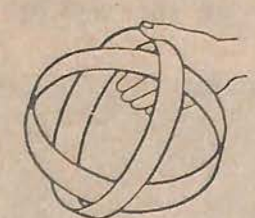




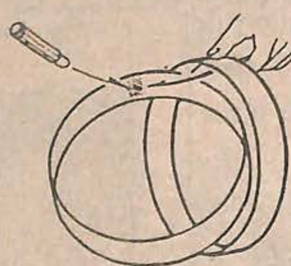
[1]



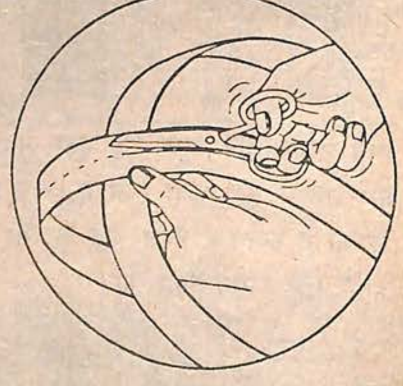
[2]



[3]



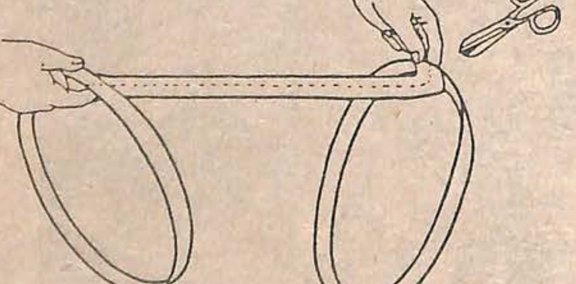
[4]



[5]



[6]



[7]

काग़ज़ की समान लंबाई की दो पट्टियां काटकर दो छल्ले बनाओ, **चित्र-1 एवं 2**। छल्लों को एक-दूसरे में फंसाओ और जहां वे एक दूसरे को क्रास करें, उनमें से एक जगह पर आपस में अच्छी तरह चिपका दो, **चित्र-3 एवं 4**। अब **चित्र-5 एवं** 6 की तरह किसी एक छल्ले को बीच से गोलाई में काटो। तुम्हें **चित्र-** की तरह एक पट्टी से जुड़े दो छल्ले मिलेंगे। अब इस पट्टी को भी बीच से लंबाई में काटकर दो हिस्सों में बांट दो, बस!

चकमक में छपी कहानियां पढ़कर तुम्हारा मन भी होता होगा कि हम भी कहानी लिखें। पर किस विषय पर, किस घटना पर और कैसे! शायद बहुत सों की गाड़ी इसी बात पर अड़ जाती होगी। क्यों न ऐसा करें कि कहानी कि शुरूआत हम करते हैं तुम उसे पूरा करो।

अच्छा पहले ऐसा करो यहां दी कहानियां पढ़ो। एक अधूरी कहानी को इटारसी के कई बच्चों ने पूरा किया। कुछ चुनी हुई, तुम भी पढ़ो।

हम बने बिही के कीड़े

पन्ना, बिशनु और मैं एक दिन बिही के बगीचे के पास खड़े थे। बगीचे के रखवाले लक्ष्मन दादा खाट पर बैठे चिलम पी रहे थे। उनकी बड़ी-बड़ी लाल आंखें और लंबी तनी हुई मूंछें देखकर हमारा दिल धक-धक कर रहा था।

तभी बिशनु बोल पड़ा, "यार हम कुछ देर के लिए कीड़े नहीं बन सकते? बिही में घुसकर मज़े करेंगे। लक्ष्मन दादा बिही के कीड़ों को तो पीट नहीं सकते। काश हम कीड़े बन पाते"हम सबके मुंह में पानी आ गया।"बिही में कीड़े को कितना मज़ा आता होगा?"

अरे यह क्या! पन्ना, बिशुन और मैं एक मीठी बिही के अंदर जा पहुंचे। सबसे पहले पन्ना बोला, "मैं पन्ना बिही का कीड़ा।"

फिर बिशनु बोला...

।। एक ।।

"... मैं बिशनु बिही का कीड़ा।"

फिर मैं बोला, "मैं गुड्डू बिही का कीड़ा।"

कुछ दिन हमारे आराम से कटे। लेकिन फिर लक्ष्मन दादा ने जिस बिही में हम थे उसे तोड़ लिया। फिर उसे एक बिही बेचने वाले के हवाले कर दिया। बिही वाले ने उसे कहीं और बेच दिया। ज़ब उन्होंने खाने के लिए बिही को काटा, तो हम सब चीख़ पड़े।



सावन पारकर, नवमीं, राजिम



अरुण अमडेकर, तेरह वर्ष, भोपाल

हमारी चीख़ सुनकर लक्ष्मन दादा ने हमें जगाया, "क्या बात है?"

हमारी जान में जान आई जब हमें पता चला कि हम सपना देख रहे थे।

☐ संदीप सिंह, छठवीं

।। दो ।।

"...... मैं भी बिही का कीड़ा बन सकता हूं।"

फिर मैं बोली, "मैं भी बिही का कीड़ा।"

फिर तीनों बिही को खाने लगे। तभी बगीचे के माली ने देखा, तो उसने पोटास (दवा) मंगवाई और बिही के पेड़ के आसपास डालना शुरू की।

तब हम तीनों वहां से भागे, "बाप रे बाप! बचाओ! यह कौन-सी झंझट में फंस गए। भागो.... भागो।"

☐ दुर्गा यादव, छठवीं

।। तीन ।।

".... मैं बिशनु बिही का कीड़ा।"

फिर मैं बोला, "मैं अजय बिही का कीड़ा।"

और हम लोग मज़े से बिही खाने लगे। कभी इस बिही में कभी उस बिही में। पहली बार हम लोगों ने इतनी सारी और इतनी मीठी बिही देखी और खाईं। मज़े की बात यह कि इतनी स्वतंत्रतापूर्वक कभी नहीं खाईं थी।

तभी लक्ष्मन दादा हाथ में डंडा लिए हमारी तरफ़ बढ़ने लगे। हम सहमे हुए उनकी तरफ़ देख रहे थे। उन्होंने नीचे झुककर एक पत्थर उठाया और पेड़ पर फेंका। तभी फर-फर की आवाज़ हुई और तोतों का एक झुंड उड़ गया। हम लोग आश्चर्य से लक्ष्मन दादा को देख रहे थे, कि उन्होंने हमें मारा नहीं? मुझे ख़्याल आया कि हम लोग बिही के कीड़े हैं। हम फिर बिही खाने में जुट गए।

तभी एक तोता आया और जिस बिही में हम लोग थे उसी पर आकर बैठ गया। वज़न के कारण बिही टूट गई और हम लोग नीचे गिर पड़े। गिरने के साथ ही मेरे मुंह से चीख़ निकल गई और मैं हड़बड़ाकर बिस्तर से उठ गया।

☐ अजय दुबे, आठवीं

।। चार ।।

".... मैं भी बिही का कीड़ा काटने में तेज़ हूं।"

मैं भी बोला, "मैंने काटा कि आदमी मर गया।" तभी लक्ष्मन दादा चौंके। उन्होंने आव देखा न ताव, डंडे से बिही के पेड़ में मारने लगे। तभी हम तीनों बिही से निकलकर लक्ष्मन दादा के पीछे खड़े हो गए।

हमने कहा, "दादा ये कीड़े बहुत ख़तरनाक होते हैं। एक बार एक खेत के रखवाले को काटा तो वह मर गया। उससे पहले भी कई रखवालों को काटा है वो सब मर गए। अब तुम्हारी बारी है। दादा तुम भाग जाओ, इसी में भलाई है। लक्ष्मन दादा अपनी धोती

सम्हालते हुए भाग खड़े हुए।

हम तीनों दोस्तों ने बड़े मज़े से बिही खाई और घर की ओर चल दिए।

☐ मनोज कुमार सोनी, आठवीं

।। पांच ।।

"... तू तो बिही का कीड़ा है, मैं तो इस पेड़ का पत्ता बनूंगा। तब मुझे बिही को देखकर ललचाना नहीं पड़ेगा, बल्कि बिही मेरा इंतज़ार करेगी कि, सूखे पेड़ में कब पत्ते आएं, कब फूल खिलें, कब मैं निकलूं।"

पन्ना बीच में बोल पड़ा, "यार तेरी बात तो बिलकुल आसमान को छू गई। सही में तुझे पत्ता होना था और मुझे कीड़ा। फिर तो हम लोग पक्के मित्र होते।"

बिशनु को यह बात ज़मी नहीं। वह खीजकर बोला, "यह भी कोई मित्रता की बात है। मैं भला तेरा मित्र क्यों होता? मैं तो तेरा दुश्मन होता, क्योंकि तू मेरे पेड़ की डाल को सड़ाता।"

पन्ना बोला, "तू कैसा मित्र है, मेरा साथ नहीं देगा!"

दोनों मित्र आपस में लड़ने लगे। उनकी लड़ाई देखकर लक्ष्मन दादा अपनी आंख को शोला बनाकर बोले, "तुम लोग क्यों लड़ रहे हो?"

तब दोनों ने अपनी बात सुनाई। उनकी बात सुनकर लक्ष्मन दादा ने अपनी आंखों को बटन बनाकर कहा, "तुम इतने सच्चे मित्र होकर लड़ते हो। तुम न तो बिही के कीड़े हो, न पत्ते, तुम बिही के लिए लड़ रहे हो। पेड़ में जितनी बिही है सब तुम्हारी है। मैं तो बूढ़ा हो गया हूं। अब तुम्हीं लोग सब बिही खा सकते हो।"

इतना सुनना था कि मैं भी उन दोनों के साथ बिही खाने में जुट गई। लक्ष्मन दादा के डर से मैं अब तक पेड़ की आड़ में छुपी हुई थी। फिर तीनों ने खूब सारी बिही खाई और अपने घर चल दिए।

☐ जेकलिन, आठवीं

।। छह ।।

".... मैं बिशनु बिही का कीड़ा।"

फिर मैं बोली, मैं सब कीड़ों से भी बड़ा कीड़ा। अब तीनों दोस्त कीड़ा बनकर आपस में लड़ने लगे।

पन्ना बोला, "मेरे पास सबसे मीठी बिही है।"

बिशुन बोला, " मैं सबसे मीठी बिही खाऊंगा।"

मैंने सोचा क्यों न मैं लड़की बनकर ही बिही खा लूं, क्योंकि लक्ष्मन दादा की तो नींद लगी है। जब तक मैं बहुत सारी बिही खा लूंगी। उन दोनों को लड़ता हुआ छोड़कर मैं बिही खाने लगी। जब पेट भर गया तो थोड़ी देर बैठ गई। तभी अचानक लक्ष्मन दादा की नींद खुल गई, तो मैं वहां से दबे पांव रफूचक्कर हो गई।

वो दोनों अभी तक लड़ रहे थे। अब वो दोनों लड़के बनकर लड़ रहे थे। लक्ष्मन दादा ने सुना तो वो एक बांस लेकर उनके पीछे भागे और खूब जमकर पिटाई की। वो दोनों लड़ रहे थे, इसलिए भाग नहीं पाए। बिही भी नहीं खा पाए। पिटाई भी हुई।

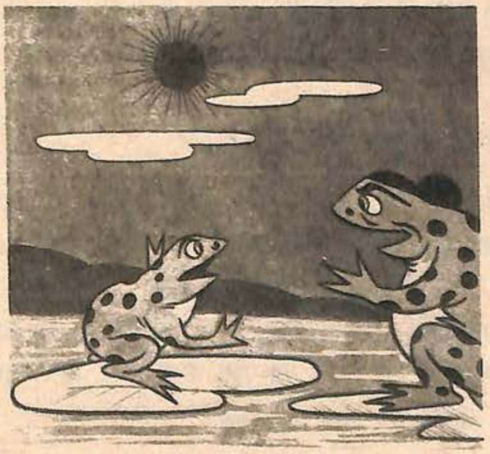
☐ शिवानी दुबे, आठवीं

तुम भी पूरी करो... यहां दी कहानी...

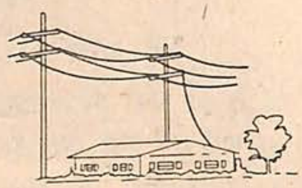
कीचड़ से भागकर, नन्हा मेंढक जैसे-तैसे तालाब के अंदर पहुंचा। उस समय उसकी मां कमल के एक बड़े पत्ते पर आनंद से कोई गीत गा रही थी। जब मां ने अपने छोटे बच्चे को अकेला देखा तो पूछा, "क्या बात है? तुम्हारे भाई-बहन कहां हैं?"

भयभीत नन्हें मेंढक ने रोते-रोते अपनी मां को सारी बात सुनाई, "मां...

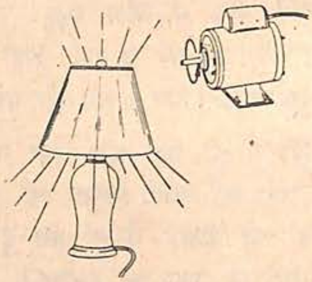
अपनी कल्पना के घोड़े दौड़ाओ। पूरी की हुई कहानी 15 फरवरी, 1991 तक हमारे पास भेज दो। चुनी हुई रचनाएं प्रकाशित की जाएंगी।



हम सबने अपने घर, स्कूल, खेत, सड़क आदि जगहों पर विद्युत के उपयोग देखे होंगे। विद्युत को लेकर तुम्हारे मन में कई सवाल होंगे। जैसे विद्युत कैसे बनती है? वह प्रकाश कैसे देती है? विद्युत की मदद से बड़ी-बड़ी मशीनें और मोटरें कैसे चलती हैं? विद्युत एक स्थान से दूसरे स्थान तक कैसे पहुंचाई जाती है? बिजली का तार छू जाने पर मनुष्य को ज़ोरों का झटका क्यों लगता है? आदि।



जब आसमान में काले बादल छाए हों तो अक्सर बादलों की गरज सुनाई पड़ती है। ऐसे समय में तुमने आसमान में बिजली चमकती देखी होगी। कभी-कभी तो यह बिजली बादलों से ज़मीन पर आ गिरती है। क्या तुमने कभी सोचा है कि यह बिजली कैसी है जो बादलों के बीच पैदा होती है?

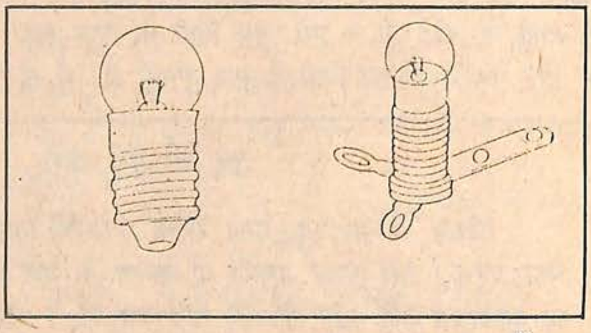


ऐसे और भी ढेर सारे प्रश्न तुम्हारे मन में उठते होंगे। इनका उत्तर पाने के लिए विद्युत के बारे में कई बुनियादी बातें सीखनी और समझनी पड़ेंगी। इसके लिए कुछ प्रयोग करने होंगे।

एक बात याद रखना। बिजली से चलने वाली वस्तुओं के साथ काम करते हुए बहुत सावधानी बरतने की ज़रूरत होती है। सावधानी न बरतने पर बिजली काफ़ी खतरनाक हो सकती है। इसीलिए हम विद्युत के सब प्रयोग टार्च या रेडियो में काम आने वाले सेलों से करेंगे। तुम भूलकर भी घर, स्कूल या खेत में लगे बिजली के कनेक्शन से प्रयोग मत करना।

बिजली के बल्ब के अंदर क्या है?

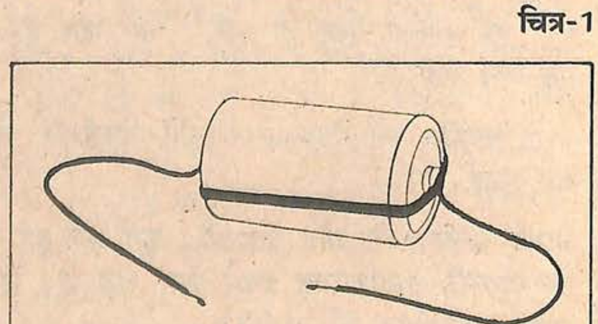
बिजली का बल्ब लो और उसे ध्यान से देखो। तुम्हें पतले कांच के गोल खोल के अंदर पतले तार की एक कुंडली दिखाई देगी। यह कुंडली **टंगस्टन धातु** की बनी होती है। कुंडली के दोनों सिरे तांबे के मोटे तारों से, धातु की दो पत्तियों से जुड़े रहते हैं। एक फ्यूज़ बल्ब ढूंढो और तोड़कर उसका निरीक्षण करो।



चित्र-1

बल्ब कैसे जलता है?

प्रयोग अपने टार्च के बल्ब से ही करना है! टार्च का बल्ब एक होल्डर में लगा होता है। **चित्र-1** देखो। इस प्रयोग के लिए एक सेल, टार्च बल्ब, होल्डर तथा बिजली के तार की ज़रूरत पड़ेगी। बल्ब को जब हम होल्डर में लगाते हैं तो वह एक **लैंप** बन जाता है। हम आगे इसे **लैंप** ही कहेंगे।



चित्र-2

अब सबसे पहले तारों के दोनों सिरों से लगभग दो-दो सेंटीमीटर तक प्लास्टिक हटा दो। तार के सिरे साफ़ होने चाहिए तथा साथ ही बल्ब होल्डर के सिरों पर भी जंग नहीं होना चाहिए। अगर साफ़ न हो तो उन्हें रेगमाल से घिसकर चमका लो। ऐसा न करने से प्रयोग सफल होने की संभावना कम रहेगी।

सेल को बल्ब से जोड़ने के लिए सेल के सिरों से तार लगाए जाते हैं। तार के सिरों को सेल से छुआ कर रखने के लिए **चित्र-2** में दिखाए तरीके से मोटे रबर बैंड का उपयोग कर सकते हैं। ऐसे बैंड साइकिल की पुरानी ट्यूब से काटकर बना सकते हो। तुम कोई और तरीका सोच सकते हो तो सोचो।

घुंडी वाले सिरे पर तार लगाते समय ध्यान रहे कि तार का सिरा घुंडी से छू रहा हो।

अब **चित्र-3** की तरह लैंप के सिरों को सेल के सिरों से जोड़ो। देखो क्या लैंप जला?

अब सेल को पलट कर लगा दो, जैसा कि **चित्र-4** में दिखाया गया है। क्या लैंप जला?

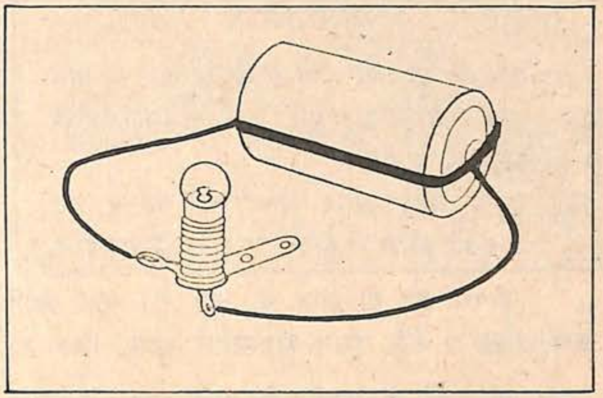
अगर लैंप के सिरे से जुड़े किसी एक तार को खोल दिया जाए, **चित्र-5** या **चित्र-6** की तरह लैंप के दोनों सिरों को सेल के एक ही सिरे से जोड़ दिया जाए, तो क्या लैंप जलेगा? करके देखो।

लैंप को जलाने के लिए उसे सेल से किस तरह जोड़ना ज़रूरी है, यह तुमने ऊपर वाले प्रयोगों से जान लिया होगा।

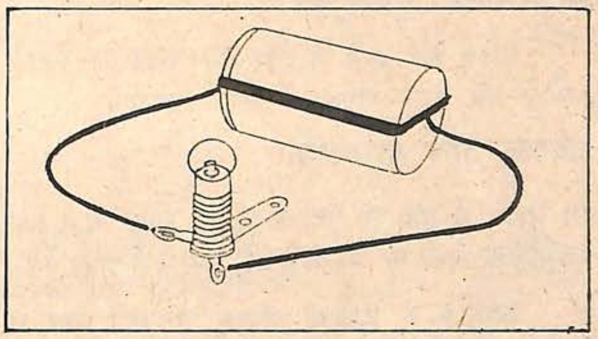
विद्युत परिपथ

तुमने देखा कि सेल से बल्ब तक बिजली आने-जाने के लिए सेल के सिरों को बल्ब से जोड़ना पड़ता है। ऐसा करने से सेल से बल्ब तक बिजली के आने-जाने का चक्कर-सा बन जाता है। इस चक्कर को **परिपथ** कहा जाता है।

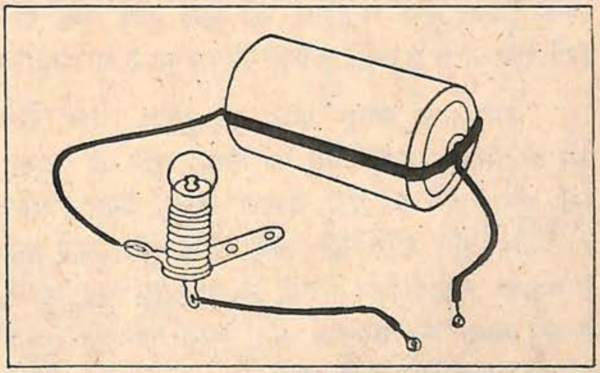
तुमने प्रयोग करने के लिए कई परिपथ बनाए थे। किसी परिपथ को **पूरा** या **चालू** तब कहते हैं जब उसमें से विद्युत बह रही हो। ऐसा न होने पर उसे **अधूरा** या **टूटा** परिपथ कहा जाएगा। सोचो तुमने जो परिपथ बनाए थे उसमें से कौन से पूरे या अधूरे थे? यह भी सोचो कि हम यह कैसे पता कर सकते हैं कि किसी परिपथ में विद्युत धारा बह रही है या नहीं?



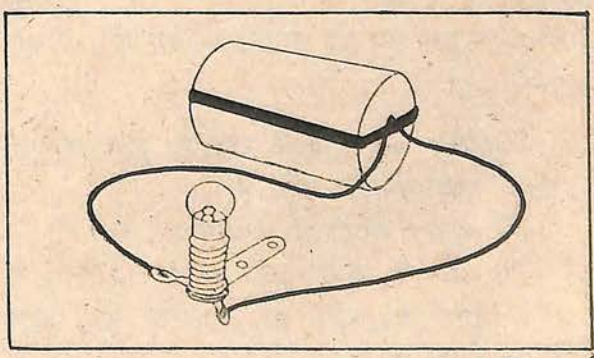
चित्र-3



चित्र-4



चित्र-5

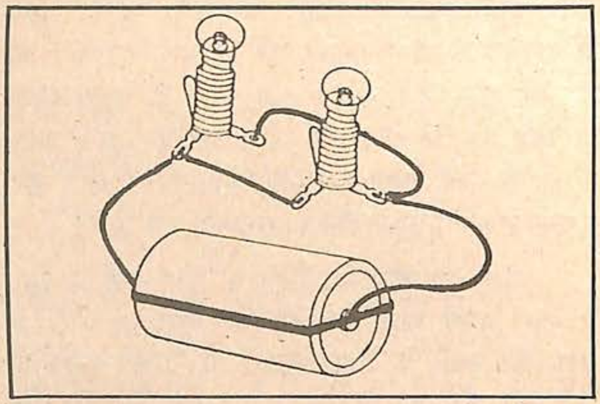


चित्र-6

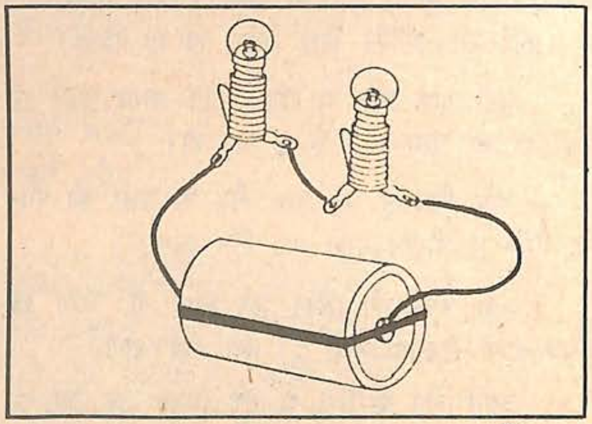
सावधानियां

1. एक ही सेल के दोनों सिरों को तार से सीधे कभी मत जोड़ो। ऐसा करने से सेल ज़ल्दी खर्च हो जाएगा।
2. प्रयोग करते समय बल्ब को फालतू मत जलाओ, इससे भी सेल जल्द ख़त्म हो जाएगा!

परिपथ भी दो तरह के होते हैं। एक **श्रेणी क्रम, चित्र-7** और दूसरा **समानांतर क्रम, चित्र-8**।



चित्र-7



चित्र-8

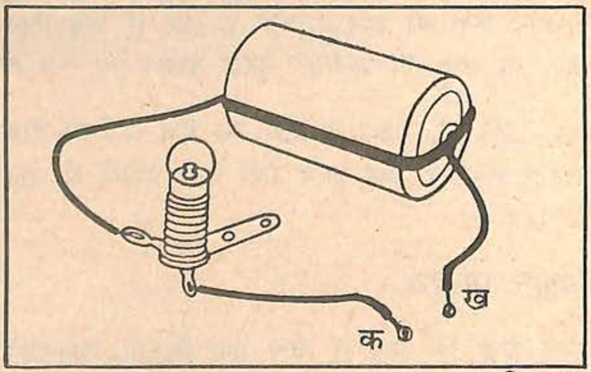
अब तुम दो बल्ब और एक सेल लो। उन्हें श्रेणी और समानांतर क्रम में बारी-बारी से जोड़ो। किस क्रम में रोशनी अधिक हुई?

रोशनी तेज़ करने के लिए किस चीज़ का उपयोग करोगे? उसे अपने परिपथ में कहां लगाओगे?

चालक और कुचालक

इस प्रयोग से हम यह पता करेंगे कि विद्युत धारा किन पदार्थों में से होकर बह सकती है और किन में से होकर नहीं!

चित्र-9 में दिखाया परिपथ बनाओ। अब **क** और **ख** सिरों को एक-दूसरे से छुआकर परिपथ पूरा करो! बल्ब जल उठेगा। अब दोनों सिरों को अलग करके उनके बीच प्लास्टिक की कोई चीज़ रख दो। देखो बल्ब जला या नहीं? बताओ परिपथ पूरा है या अधूरा?



चित्र- 9

इसी तरह कांच, चमड़े का टुकड़ा, चाक, दस पैसे का सिक्का, पच्चीस पैसे का सिक्का, फूल की पंखुड़ी, सूती धागा, लोहे की पत्ती, कागज़, कील, पीतल, पेंसिल का सीसा और बल्ब की चपड़ी जैसी चीज़ें बारी-बारी से रखकर देखो। जिन पदार्थों में से विद्युत बह सकती है उन्हें विद्युत का **चालक** और जिनसे नहीं बह सकती है उन्हें **कुचालक** कहा जाता है!

अगले अंक में कुछ और प्रयोगों के बारे में चर्चा करेंगे। तब तक तुम इन सवालों पर भी सोच-विचार करो—

- ☐ *बल्ब की कुंडली टंगस्टन धातु की ही क्यों बनाई जाती है?*
- ☐ *बल्ब में चपड़ी का उपयोग क्यों होता है?*
- ☐ *घरों में काम आने वाली बिजली के तारों पर रबर या प्लास्टिक क्यों चढ़ा रहता है?*
- ☐ *मोटर या बस की बैट्री के दो सिरे होते हैं। एक सिरे को मोटर या बस के बाहरी ढांचे से जोड़ा जाता है और दूसरे को सामने और पीछे लगे बल्बों से। पता लगाओ कि विद्युत परिपथ कैसे पूरा हो रहा है?*
- ☐ *प्लास्टिक तथा धातु की टार्च में परिपथ कैसे बनता है?*

(सामग्री तथा चित्र बालवैज्ञानिक कक्षा-6 के अध्याय विद्युत-1 से)



हमसे सब कहते



नहीं सूर्य से कहता कोई
धूप यहां पर मत फैलाओ
कोई नहीं चांद से कहता
उठा चांदनी को ले जाओ।

कोई नहीं हवा से कहता
ख़बरदार जो अंदर आई
बादल से कहता कब कोई
क्यों जलधार यहां बरसाई?



फिर क्यों हमसे भैया कहते
यहां न आओ, भागो जाओ।
अम्मा कहती हैं – 'घर भर में
खेल खिलौने मत फैलाओ।'

पापा कहते – 'बाहर खेलो,
ख़बरदार जो अंदर आए।'
हम पर ही सबका बस चलता
जो चाहे वह डांट बताए।

☐ निरंकार देव सेवक

चित्र : हूताराम अधिकारी



भूगर्भ की यात्रा

अब तक तुमने पढ़ा...

प्रोफ़ेसर अपने एक सहायक और पथ प्रदर्शक के साथ भूगर्भ की यात्रा पर हैं। वे एक अजीब-सी गुफा में थे। फिर वे एक समुद्र में पहुंचे। समुद्र में वे एक बेड़े पर सवार होकर यात्रा कर रहे थे। यात्रा करते हुए वे इंग्लैंड, फ्रांस और शायद पूरे यूरोप के नीचे से गुजर चुके थे। आख़िरकार वे एक किनारे पर लग ही गए। उनका बेड़ा टूट चुका था। अब आगे पढ़ो...

प्रोफ़ेसर ने कहा, "मैं हैंस से अनुरोध करूंगा कि वो बेड़े की मरम्मत कर डाले। हालांकि इसका दुबारा उपयोग करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।"

"क्यों नहीं है?" मैंने पूछा।

"ऐसा मेरा विचार है, मेरे बच्चे। मैं नहीं सोचता कि हमें उसी रास्ते से बाहर जाना होगा जिससे हम अंदर आए हैं।"

मैंने चाचा जी की तरफ आश्चर्य से देखा कि कहीं वे पागल तो नहीं हो गए।

"अब हमें कुछ नाश्ता कर लेना चाहिए," वे बोले। हमने बहुत बढ़िया नाश्ता किया। मेरे जीवन में वैसा नाश्ता एकाध ही बार मिला होगा। नाश्ता करते समय मैंने चाचा जी से पूछा कि वे यहां पर यह ठीक-ठीक कैसे जान लेते हैं कि हम किस जगह पर हैं।

"हम बिल्कुल ठीक-ठीक तो नहीं जान सकते," उन्होंने उत्तर दिया। "सच तो यह है कि ऐसा करना असंभव है, क्योंकि पिछले तीन तूफ़ानी दिनों में हमने न तो अपनी यात्रा की चाल ही नोट की है और न दिशा ही। तो भी हम अपनी स्थिति का कुछ न कुछ अनुमान लगा सकते हैं।"

"अब जरा मैं देखता हूं। इस 'गीजर द्वीप' में—"

"इसी नाम से पुकारो, मेरे बच्चे। इसके ठीक नाम से पुकारने में शरम क्यों?"

"अच्छा ऐसा ही सही। उस द्वीप से हम 810 मील आगे बढ़ आए हैं। अब इन चार तूफ़ानी दिनों का हिसाब लगाइए। इन दिनों हमारी चाल कम से कम 240 मील प्रति दिन रही होगी। अगर अब तक की कुल दूरी का अनुमान लगाएं तो हमें भूमध्य सागर के नीचे होना चाहिए। दिशा तो हमें दिग्दर्शक से ही ज्ञात हो सकती है।" मैंने एक लंबा-चौड़ा व्याख्यान जैसा दे डाला।

चाचा जी खुशी के मारे हाथ मलने लगे। वे एक बार फिर से जवान हो उठे थे। मैं समझ गया कि वे मेरे अनुमान की सच्चाई जानने के लिए उत्सुक थे। तभी न जाने क्यों वे बड़े गौर से कंपास की तरफ देखने लगे। आंखें मल-मलकर बार-बार उसे देख रहे थे। लगता था, कोई ऐसी चीज़ देख ली है जिस पर उन्हें विश्वास नहीं हो रहा है।

"क्या बात है चाचा जी?" मैंने पूछा, उन्होंने कंपास देखने के लिए मुझे इशारा किया। मुझे भी आश्चर्य हुआ। मैंने हिलाकर कंपास की परीक्षा की। वह तो एकदम ठीक था । फिर क्या बात थी? हमें किस बात पर आश्चर्य हुआ जानते हैं आप? नहीं।

बात यह हुई थी कि तूफ़ान में हमें दिशा का ज्ञान नहीं हो पाया था। हवा ने हमें फिर उसी तट पर ला पटका था जिसे हम पीछे छोड़ आए समझ रहे थे। चाचा जी की क्या हालत थी, यह बताने के लिए मुझे शब्द ढूंढे नहीं मिल रहे थे। मैंने उन्हें इतना निराश और क्रुद्ध कभी न देखा था। इतनी भयानक और थका देने वाली यात्रा अब हमें फिर से करनी थी।

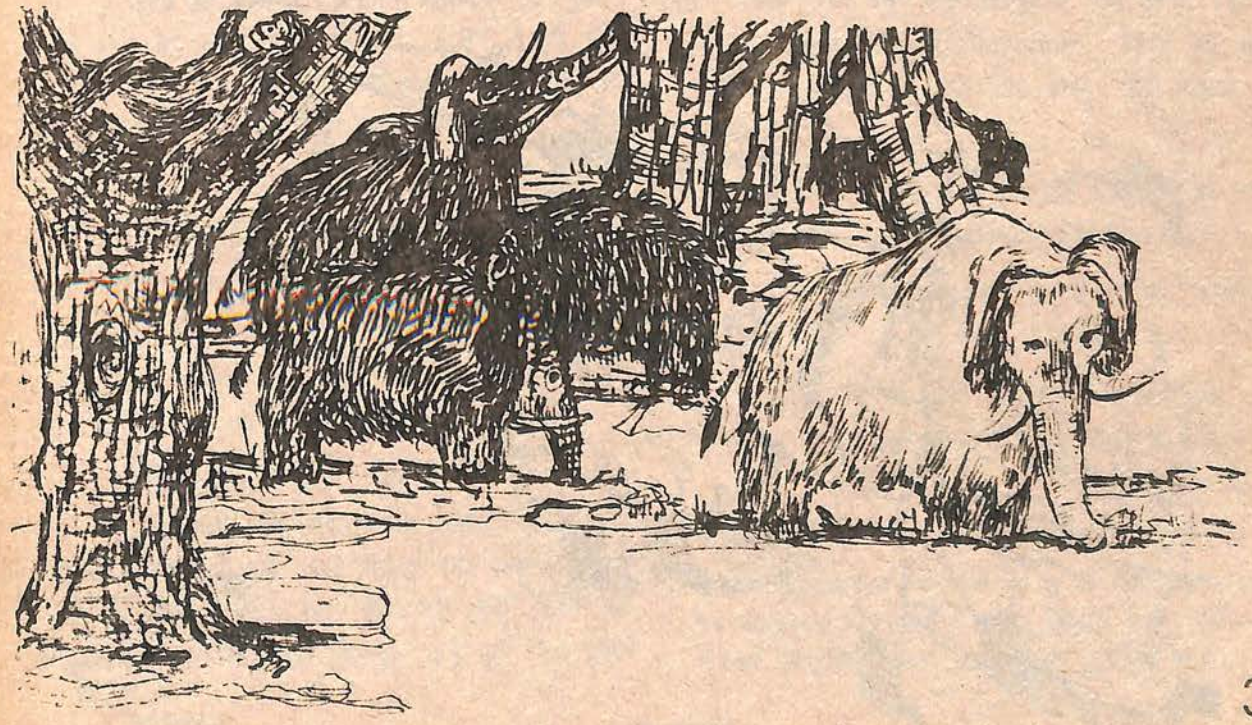
हम आगे के बजाय पीछे लौट आए थे।

"हम कैसे अभागे हैं, हर बात मेरे विरुद्ध ही हो रही है। हवा, आग, पानी, सभी मुझे रोकने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन वे मुझे रोक न सकेंगे। मैं वापस नहीं लौटूंगा। हम देखेंगे कि कौन जीतता है। मानव या प्रकृति?"

"चाचा जी," मैं बड़े शांत स्वर में बोला, "संसार में कुछ ऐसी चीज़ें हैं जिन्हें करना मनुष्य के लिए

असंभव ही है। असंभव के विरुद्ध संघर्ष करने से कोई लाभ नहीं। हम ऐसी स्थिति में नहीं हैं कि समुद्र द्वारा दूसरी यात्रा करें। इस अधटूटे से बेड़े पर हम 1500 मील की यात्रा नहीं कर पाएंगे। हमारे पतवार भी बह गए हैं। तूफ़ान हमारा सब कुछ बिगाड़ सकता है। हम उसके आगे एकदम असहाय हैं।" मैं इस तरह लगभग 10 मिनट तक बोलता रहा लेकिन वह भी सिर्फ़ इसलिए, क्योंकि चाचा जी मेरी बातों पर कोई ध्यान नहीं दे रहे थे। जो कुछ मैं बोला उसका एक शब्द भी उन्होंने नहीं सुना। मैंने पूरी तरह से कोशिश की कि उनका इरादा बदल जाए लेकिन कोई फ़ायदा नहीं हुआ। वे अपने निश्चय पर दृढ़ रहे। हैंस ने बेड़ा और भी अधिक मज़बूत कर लिया था। नए पतवार भी बन गए थे। शायद उसने चाचा जी के इरादे का पता पहले से ही लगा लिया था। प्रोफ़ेसर ने हैंस को कुछ आवश्यक निर्देश दिए। उसने थोड़ी देर में ही यात्रा की सारी तैयारी कर डाली। सारा सामान बेड़े पर रख लिया गया। मौसम बिलकुल साफ़ था। बहुत सुहावनी उत्तर-पश्चिमी हवा चल रही थी। मैं क्या कर सकता था? इन दोनों के विरुद्ध मुझ अकेले को सफलता कैसे मिल सकती थी? हैंस यद्यपि था मेरे पक्ष में फिर भी मज़बूती उसे चाचा जी का साथ दिला रही थी। लाचार होकर मैं बेड़े पर बैठने लगा। तभी चाचा जी ने मुझे रोका।

"हम कल तक नहीं चलेंगे," वे बोले, "इस तट पर जब हम ला ही पटके गए हैं तो फिर इसे अच्छी तरह से देख भी लें। इसमें संदेह नहीं कि हम उत्तरी तट पर लौट आए थे, लेकिन उसी हिस्से पर नहीं जिससे हम रवाना हुए थे। प्रोफ़ेसर की इच्छा मुझे उचित ही जान पड़ी। तट और हमारे पीछे वाली चट्टानी दीवार के बीच अधिक दूरी नहीं थी। लगभग आधे घंटे में हम उस दीवार तक जा पहुंचे। इस पुराने तट को हम बड़े ध्यान से देखते चल रहे थे। अब चट्टानें समाप्त हो चली थीं और हमारे सामने था विस्तृत प्रदेश—हड्डियों से भरपूर। हमने उन हड्डियों की जांच की; वे सभी संग्रहालय में रखने योग्य थीं। करोड़ों वर्ष पूर्व पाए जाने वाले जानवरों की हड्डियों के ढेर लगे थे। वहां चाचा जी का मुंह मारे आश्चर्य के खुला का खुला रह गया। हम आधे घंटे इसी तरह और चलते रहे। मैंने एक बड़ी विचित्र बात वहां देखी। ज़मीन पर हमारी छाया नहीं पड़ती थी। न जाने कहां से आ रहा था वह प्रकाश। मील भर चलने के बाद हम जंगल के छोर तक जा पहुंचे। सभी पेड़ सदियों पुराने थे। पृथ्वी पर अब इनका नाम-निशान नहीं मिलता। न तो इनमें कोई रंग था, और न फूल इत्यादि ही। मैं चाचा जी के पीछे-पीछे चलता गया। अचानक मैं रुका। चाचा जी का ध्यान पेड़ों के नीचे घूम रहे एक विचित्र आकार वाले जंतु की तरफ आकर्षित कराया। वह हिमयुग का एक बहुत बड़ा हाथी था। इसका शरीर लंबे बालों से ढका हुआ था। धीरे-धीरे वहां इस तरह के लगभग 20 हाथी इकट्ठा हो गए।



"आओ," चाचा जी बोले "उन्हें ज़रा पास से देखें।"

"नहीं नहीं," मैं बोला "यह तो बहुत ख़तरनाक होगा। हमारे पास बंदूकें भी नहीं हैं। अगर कहीं ये हमें देख लेंगे तो हम अपनी रक्षा कैसे करेंगे? कोई आदमी उनके पास जाने का साहस नहीं कर सकता।"

"कोई आदमी नहीं?" चाचा जी बोले, "तुम ग़लती कर रहे हो, उस तरफ़ देखो। एक हमारी तरह का ही आदमी, वह देखो पेड़ की उस डाल पर आराम कर रहा है।"

मुझे उनकी बात पर विश्वास न हुआ। फिर भी मैंने देखा। उनका कहना ठीक था। एक आदमी डाल पर बैठा था। उसके बाल भी इन्हीं जंतुओं के जैसे जान पड़ते थे। हम एक सुरक्षित स्थान में भागकर छिप गए, क्योंकि हाथियों ने शायद हमें देख लिया था। अब मेरा चित्त ठिकाने पर आया। मैं कैसे इस आंखों देखी बात पर अविश्वास करू। मुझे सब कुछ स्वप्न जैसा लग रहा था। यहां किसी आदमी का होना क्या संभव था? चाहे जो हो, हम भागे—पागलों की तरह भागे—सीधे समुद्रतट पर आकर ही दम लिया।

तथापि मुझे पूरा विश्वास था कि यह वह भाग नहीं था जिससे हमने बेड़े पर बैठकर यात्रा शुरू की थी। कभी-कभी कुछ चट्टानों के समूह देखकर लगता कि जैसे मैंने इन्हें पहले भी कभी देखा है। फिर भी सब कुछ इतना विचित्र था कि कुछ विश्वास नहीं होता था। चाचा जी ने मुझसे एक बार फिर पूछा, "क्यों, तुम्हें पूरा विश्वास है कि इस स्थान से हमने यात्रा नहीं शुरू की थी?"

"चाचा जी, वैसे तो निश्चित रूप से कुछ कहना बड़ा कठिन है लेकिन मैं उस जगह को अच्छी तरह से पहचानता हूं जहां पर हैंस ने बेड़ा तैयार किया था।"

"लेकिन मुझे तो यहां कोई ऐसा चिह्न नहीं दिखाई दे रहा है, जिससे पता चले कि हम यहां से चले थे।"

"मैं तो देख रहा हूं।"

"क्या देख रहे हो?"

"आप भी देखिए न।" यह कहकर मैंने ज़मीन पर पड़ा एक चाकू उन्हें दिखाया।

"क्या," चाचा जी ने मुझसे पूछा, "तुम यह अपने साथ लाए थे?"

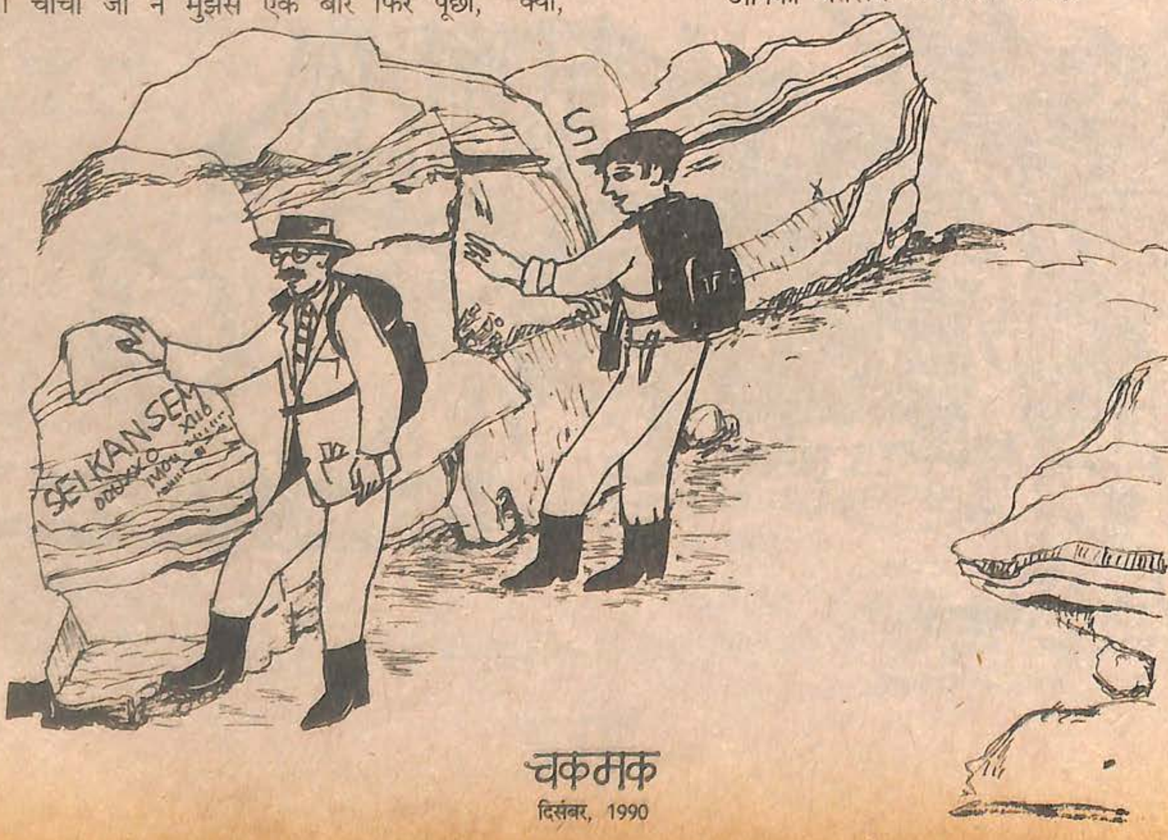
"मैं? नहीं बल्कि आप—"

"नहीं, मैं अपने साथ ऐसी कोई चीज़ नहीं लाया।"

"बड़े आश्चर्य की बात है।"

तभी चाचा जी कुछ सोचकर बोले, "इसे न तो मैं लाया, न तुम और न हैंस ही। यह 300 वर्ष पूर्व यहां लाया गया था। शायद किसी चट्टान पर नाम खोदने के लिए कोई उसे अपने साथ लाया होगा।"

"आपका मतलब सैकनसेम से है?"



"हां, आओ देखें। शायद उसने कहीं अपना नाम लिख रखा हो।" हम बड़े ध्यान से हर दरार देखते हुए चले। एकाएक चाचा जी बड़े ज़ोर से चिल्लाए "सैकनसेम! हर जगह सैकनसेम!"

मैंने देखा, एक चट्टान पर सैकनसेम का नाम खुदा हुआ था।

"कितने महान् थे तुम! तुमने वह हर काम किया जो केवल तुम्हीं द्वारा संभव हो सका। तुमने हमारा जैसा पथप्रदर्शन किया है वैसा कोई नहीं कर सकता... कोई नहीं कर सकता। मैं पृथ्वी के बीचों-बीच वाली चट्टान पर भी तुम्हारा नाम खुदा हुआ पाऊंगा। मुझे इसकी पूरी आशा है। मैं भी वहीं अपना नाम लिखूंगा।"

मेरे मन में एक आग सी लगी थी। मैं सब कुछ भूल गया। यात्रा के सारे ख़तरे भूल गया। एक आदमी जिस यात्रा को कर चुका है उसमें डर कैसा? मुझे लगा कि इसमें कोई कठिनाई नहीं।

"आगे बढ़िए! आगे बढ़िए!"

इतना कहते-कहते मैं कूदकर जोश के साथ इस अंधेरे मार्ग में चलने लगा। तभी चाचा जी ने मुझे रोका, "रुको, पहले हैंस को तो बुला लें।" मैंने उनकी बात मान ली और वापस लौटा।

"चाचा जी," मैं बोला, "दुर्घटनाएं हमारे लिए बड़े काम की रहीं।"

"तुम ऐसा सोचते हो?" चाचा जी ने पूछा। "जी हां। हर चीज़, यहां तक कि तूफ़ान ने भी हमें ठीक रास्ते पर आने में बड़ी सहायता की। दक्षिणी तट पर पहुंचकर हम सिर्फ़ इधर-उधर भटका करते। और क्या करते?"

"सच ही, हम बड़े भाग्यशाली रहे, मेरे बच्चे—"

"लेकिन हम फिर उत्तर में जा रहे हैं। यही न। हमें योरोप के उत्तरी प्रदेश होकर गुजरना होगा।" "हां, ठीक कहते हो तुम। हमें बराबर नीचे ही जाना होगा। अभी हम सिर्फ़ 4500 मील ही चले हैं।"

"सिर्फ़ 4500 मील!" मैंने कहा, "यह तो कुछ भी नहीं हुआ।" हमें तुरंत चल पड़ना चाहिए। ये पागलों जैसी बातें तब तक चलती रहीं जब तक हम बेड़े के पास न पहुंच गए। हैंस को साथ लेकर हम चल पड़े। लगभग शाम के छः बजे हम एक खोह के मुहाने तक पहुंचे। "अब हमें अंदर चल पड़ना चाहिए," मैं चिल्लाया।

"हां," चाचा जी बोले "लेकिन पहले इस नए रास्ते की जांच कर ली जाए। यह मुहाना लगभग पांच फुट घेरे का था। इसके बाद था वह रास्ता जो हमें पृथ्वी के बीचो-बीच पहुंचाने वाला था। हम उसके अंदर छः कदम ही चले थे कि आशा के विपरीत रास्ता बंद पाया। हमने अपने दाहिने, बांए, ऊपर, नीचे सब तरफ देखा लेकिन कोई रास्ता नज़र न आया। मैं बिल्कुल निराश हो गया। मैंने तथ्यों पर विश्वास करना छोड़ दिया। कोई दरार तक नहीं दिखाई दी। क्या करना चाहिए? कुछ समझ में नहीं आ रहा था। मैं ज़मीन पर बैठ गया। चाचा जी इधर-उधर घूमते रहे।

"सैकनसेम ने यहां आकर क्या किया?"

"अरे हां," चाचा जी बोले, "क्या इस चट्टान के कारण वह रुका होगा?"

"नहीं, नहीं," मैं बोला, "सैकनसेम के आने तक यह रास्ता खुला हुआ होगा। तब से बहुत वर्ष बीत गए। सैकनसेम ने इसे खुला हुआ पाया और हमने बंद। हमें इसे फिर से खोलना पड़ेगा।"

"बहुत ठीक," चाचा जी बोले, "हमें कुदाली से रास्ता बनाना चाहिए। हमें इस दीवार को तोड़ना पड़ेगा।"

"यह बहुत कड़ी दीवार है। कुदाली से शायद ही टूटे। बारूद कैसी रहेगी इसके लिए?"

"बारूद बिल्कुल ठीक रहेगी," चाचा जी बोले "हमें इस चट्टान को उड़ा देना होगा। हैंस बारूद ले आओ।"

क़रीब 12 बजे तक हम एक छेद बनाकर उसमें बारूद भरते रहे। सारे समय मैं बड़ा उत्तेजित सा रहा।

"हमें कल तक प्रतीक्षा करनी चाहिए," प्रोफ़ेसर बोले।

बेहद उत्तेजित होते हुए भी छः घंटे के लंबे समय तक इंतज़ार करने वाली बात मुझे माननी ही पड़ी।

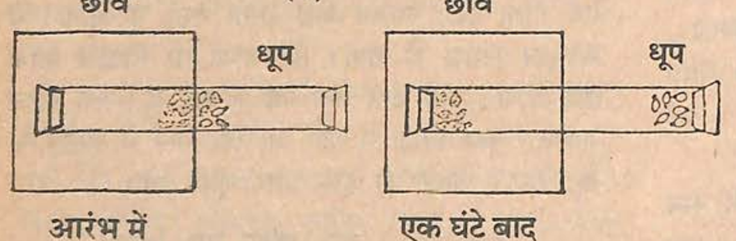
(अगले अंक में जारी)

जूलेवर्न के उपन्यास '*ए जर्नी इन टू दी सेंटर ऑफ अर्थ*' का अनुवाद। अनुवादक : प्रभात किशोर मिश्र। सौजन्य : इंडियन प्रेस, इलाहाबाद। सभी चित्र : शोभा घारे।



माथापच्ची

(1)



एक वैज्ञानिक ने कांच की एक लंबी नली ली और उसके ठीक बीचों-बीच दो विभिन्न जातियों के कीड़े मिलाकर रख दिए। फिर नली के दोनों सिरों को कार्क से बंद करके, नली को इस प्रकार रखा कि उसका एक भाग धूप में था और दूसरा छांव में। एक घंटे बाद वैज्ञानिक ने देखा कि एक जाति के सभी कीड़े नली में उस सिरे पर एकत्रित हो गए, जिस पर धूप पड़ रही थी और दूसरी जाति के उस सिरे पर, जिस पर छांव पड़ रही थी। इस प्रयोग से तुम क्या निष्कर्ष निकाल सकते हो?

(2)

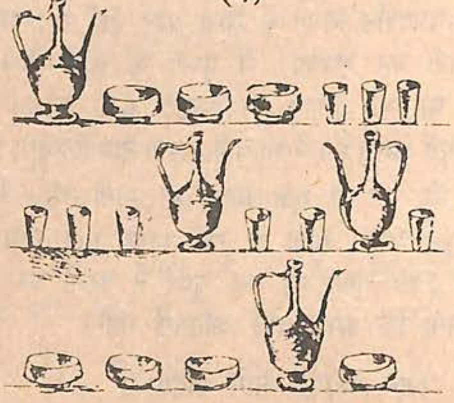
रमन के दादाजी पढ़ते समय चश्मा लगाते थे, जिससे उन्हें अक्षर चार गुना बड़े दिखाई देते थे। एक दिन दादा जी रमन की रेखा गणित की नोटबुक देख रहे थे, जिसमें 2° का कोण भी बनाया था। बताओ दादा जी को वह कोण कितने अंश का दिखेगा?

(3)

हम अपनी रोज़मर्रा की बातचीत में कहावतों और मुहावरों का उपयोग करते हैं। लेकिन कभी इस बात पर ध्यान दिया है कि उनके पीछे क्या कारण है। आओ इस बार कुछ ऐसे ही मुहावरों पर माथा पच्ची करो। इन मुहावरों में कोई न कोई वैज्ञानिक तथ्य छुपा हुआ है—

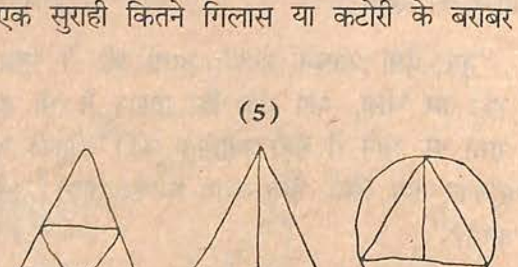
1. मुंह में पानी आना
2. रोंगटे खड़े होना
3. चेहरा शर्म/क्रोध से लाल होना
4. दिन में तारे नज़र आना।

(4)



यहां पंक्तियों में कुछ सुराही, कटोरियां तथा गिलास रखे हैं। तीनों पंक्तियों के बर्तनों में समान मात्रा में द्रव आता है। सबसे छोटा बर्तन गिलास है। पहली पंक्ति में तीनों तरह के बर्तन हैं, लेकिन दूसरी पंक्ति में कटोरी नहीं है और तीसरी पंक्ति में गिलास। पता यह करना है कि एक कटोरी कितने गिलास के बराबर है और एक सुराही कितने गिलास या कटोरी के बराबर है?

(5)



यहां दी हुई आकृतियों को बिना पेन या पेंसिल उठाए बनाना है। यह भी याद रहे कि एक लाइन एक बार ही बनेगी, दुबारा उस पर नहीं आना है।

क्यों... क्यों... 4

मुनिया के पड़ोस की काकी के यहां एक और छोटी और बिटिया का जन्म हुआ। मुनिया को तो जैसे खिलौना मिल गया। जब भी मौका मिलता मुनिया उसे ही खिलाती रहती।

ऐसे ही एक दिन शाम के समय मुनिया काकी के घर थी। छोटी बिटिया रोए जा रही थी। काकी परेशान थीं। बच्ची का रोना सुनकर मुनिया की मां भी चली आईं। आते ही उन्होंने पूछा, "क्या हुआ बिटिया को! अरे मुनिया, तूने कहीं गिरा-गिरू तो नहीं दिया उसे?"

"नहीं जीजी! मुनिया ने कुछ नहीं किया! बस वो तो ऐसे ही रोए जा रही है।"

"अरे तो भूखी होगी दूध पिला उसे।" मुनिया की मां बोली!

"दूध तो दो-तीन बार पिला चुकी हूं, पर थोड़ी देर बाद उगल देती है।"

"हूं, लगता है नज़र लग गई है इसे। ठहर मैं अभी उतारती हूं।"

मुनिया की मां लौटकर अपने घर गई। मुनिया का दिमाग दौड़ने लगा। क्यों... क्योंकि घंटी बजने लगी। पर वह चुप रही। मां लौटी एक कटोरी में तेल, मिर्च, बाल और न जाने क्या-क्या लेकर। उन्होंने काकी से कहा, "अब तू दूध पिला इसे।"

जब काकी दूध पिला चुकीं तो मां ने कहा, "अब बिटिया को ज़रा कंधे से लगा ले।"

काकी ने ऐसा ही किया। मां कटोरी को दो-तीन बार बिटिया के सिर से पैर तक लाईं और होठों ही होठों में कुछ बुदबुदाईं। फिर काकी से कहा, "बिटिया को ऐसे ही लगाए रह थोड़ी देर कंधे से।" और कटोरी की चीज़ें पास जलते चूल्हे में डाल दीं।

थोड़ी देर बाद मुनिया ने पाया कि बिटिया ने इस बार दूध भी नहीं उगला और वह तो सो गई है। पर **क्या वास्तव में ऐसा नज़र उतारने के कारण हुआ या... बात कुछ और है?**

मुनिया पूरे घटना क्रम को फिर से याद करने की कोशिश करने लगी...!

तुम भी देखो और बताओ, पता लगाओ कि **वास्तव में ऐसा नज़र उतारने के कारण हुआ या...? नज़र से क्या होता है? अन्य कारण क्या हैं?**

तुम्हारे जवाब हमें 15 मार्च, 1991 तक मिल जाने चाहिए। लिफ़ाफ़े, पोस्टकार्ड आदि पर **'क्यों-क्यों-4' लिखना** मत भूलना। और हां यह भी लिखना कि **तुमने कैसे, किससे पता किया!**

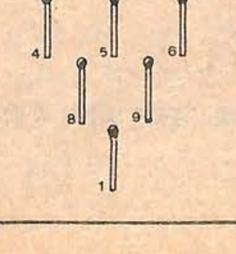
माथापच्ची : हल नवंबर अंक के

(1)



(2) लंबाई × चौड़ाई, 6 × 3 या 4 × 4 होगी।

(3)

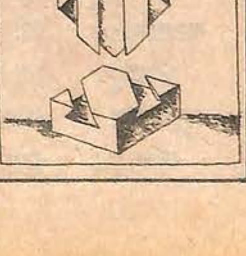


अगर हम दसों तीलियों को 1 से 10 तक एक-एक नंबर दे दें, तो यहां दिया चित्र देखो। सातवीं तीली को उठाकर दूसरी के बाजू में और दसवीं को तीसरी के बाजू में रखो। पहली को उठाकर आठवीं तथा नवीं के नीचे रखो।

(4) एक रु. के 29, आठ रु. का 1, और नौ रु. के 7 टिकट खरीदे।

(5) क्योंकि नर्स के कपड़ों पर स्टार्च लगाया गया था। आयोडीन स्टार्च को काला कर देती है!

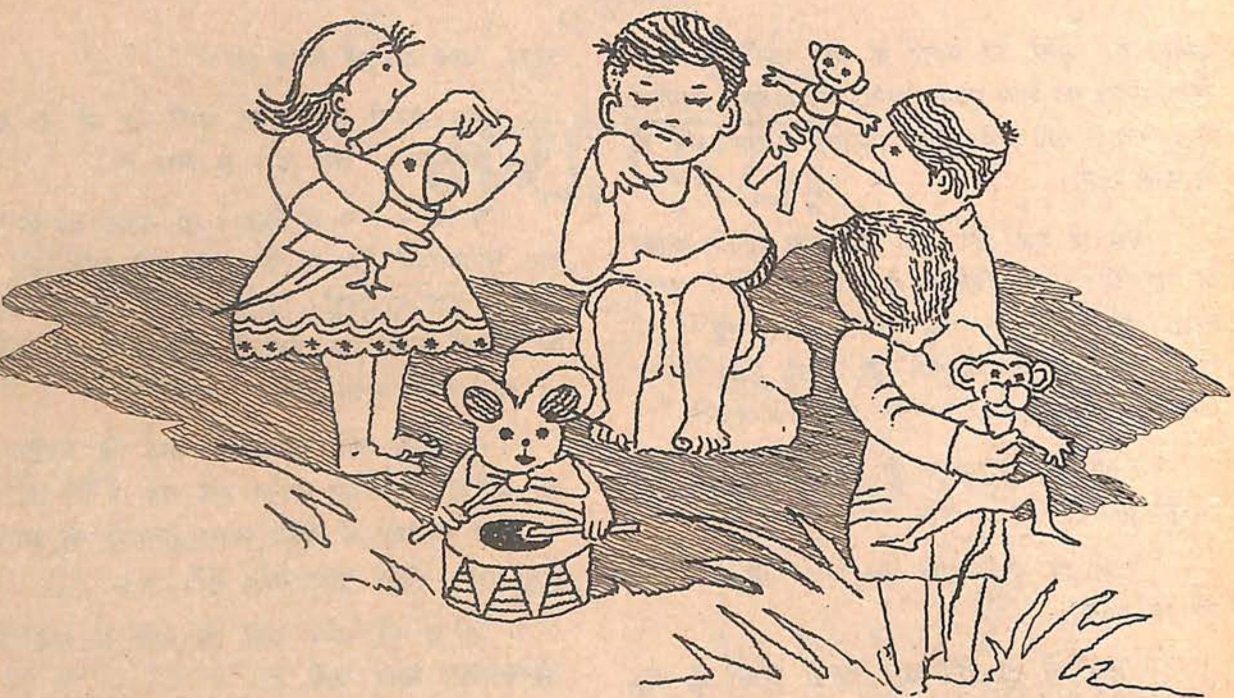
(6)



(8) एक भी सीढ़ी नहीं डूबेगी।

(9) एक बार!

नजानू कवि बना!



[बच्चों के खेलने का मैदान। एक कोने में नजानू उदास बैठा है। उसके मित्र अपने खिलौने ले कर वहीं आते हैं।]

मोटू : अरे नजानू। वहां क्यों बैठे हो?
छोटू : आओ हम लोग नदी पहाड़ खेलेंगे।
नजानू : नहीं, तुम लोग खेलो।
जल्दबाज़ : अच्छा, राजा का मुर्ग़ा खेलोगे?
नजानू : नहीं।
सुस्तराम : आंख-मिचौली?
नजानू : मुझे तुम्हारे गंदे खेल नहीं खेलना।
मोटू : तो मरो! आओ, हम लोग नदी-पहाड़ खेलते हैं।
छोटू : मगर मैं बनूंगा।
सुस्तराम : ठीक है।
जल्दबाज़ : तैयार?
सब : तैयार।

[सारे बच्चे खेलने लगते हैं। नजानू उन्हें मुंह चिढ़ाता है। गुलदस्ता वहां आता है।]

गुलदस्ता : नजानू, ओ नजानू! वहां चुपचाप क्यों बैठे हो? खेलोगे नहीं।
नजानू : नहीं, मेरा मन खेल में नहीं लगता। मैं बड़ा कलाकार बनना चाहता हूं।
गुलदस्ता : अरे हां! तुम तो चित्रकारी सीख रहे थे न?
नजानू : हांऽ। लेकिन वो काम मुझे पसंद नहीं आया।
गुलदस्ता : क्यों, क्यों?
नजानू : एक दिन मैंने डॉक्टर गोलीवाला की दीवार पर भैंस का चित्र बनाया था। उन्होंने मेरी मां से शिकायत कर दी।
गुलदस्ता : अच्छा! तो यह बात है।
नजानू : गुलदस्ता जी! आप कविताएं कैसे लिख लेते हैं?

गुलदस्ता : बहुत आसानी से। लेकिन उसके लिए मुझे बहुत मेहनत करनी पड़ी थी।

नजानू : आप मुझे कविता सिखा देंगे? मैं भी कवि बनना चाहता हूं।

गुलदस्ता : हूं... सिखा तो सकता हूं... अगर तुममें कविता रचने की प्रतिभा हो तो।

नजानू : हां-हां, है क्यों नहीं? मैं तो बहुत प्रतिभाशाली हूं।

गुलदस्ता : अपने मुंह मियां मिट्ठू!

नजानू : क्या?

गुलदस्ता : कुछ नहीं। मैं तो कह रहा था कि तुम्हारी प्रतिभा की परख करनी पड़ेगी। तुम जानते हो, तुक क्या होती है?

नजानू : तुक? नहीं, मैं तो नहीं जानता।

गुलदस्ता : तुक उसको कहते हैं जब दो शब्दों का अंत एक ही तरह से होता है..जैसे चिड़िया-गुड़िया, घोड़ा-थोड़ा, समझे?

नजानू : हां, समझ गया।

गुलदस्ता : अच्छा, छड़ी का तुक बताओ।

नजानू : झाड़ी!

गुलदस्ता : यह कैसी तुक है—छड़ी-झाड़ी? इन शब्दों से तुक नहीं बनती।

नजानू : वाह क्यों नहीं बनती? इनक़ा अंत तो एक ही तरह से होता है।

गुलदस्ता : मगर कविता रचने के लिए इतना ही काफ़ी नहीं है। यह ज़रूरी है कि शब्द एक ही तरह के हों और कविता का जोड़ बैठ सके। लो, सुनो, छड़ी-घड़ी, भट्टी-खट्टी, किताब-हिसाब।

नजानू : समझ गया, समझ गया! छड़ी-घड़ी, भट्टी-खट्टी; किताब-हिसाब, शाबास। हा-हा-हा।

[नजानू अपनी ही पीठ ठोकर कर खुश होता है।]

गुलदस्ता : अच्छा, अब सोंटा शब्द का तुक बताओ।

नजानू : ठोंटा!

गुलदस्ता : ठोंटा? ऐसा तो कोई शब्द नहीं है।

नजानू : है, है क्यों नहीं?

गुलदस्ता : बिलकुल नहीं है।

नजानू : अच्छा तो उलठोंटा।

गुलदस्ता : यह उलठोंटा क्या चीज़ है?

नजानू : जब उल्टे खड़े होकर गाना गाते हैं, तो वह है उलठोंटा।



गुलदस्ता : तुम मुझे, बुद्धू बना रहे हो। इस तरह का कोई शब्द नहीं होता। सुनो, अगर कविता करनी है तो ऐसा शब्द चुनना चाहिए जिसे सब समझते हों। ऐसा नहीं, जिसे खुद ही बना लिया हो।

नजानू : और अगर ऐसा शब्द न मिले जिसे सब समझते हों, तो?

गुलदस्ता : इसका मतलब यह है कि तुममें कविता रचने की प्रतिभा नहीं।

नजानू : तो तुम खुद ही बताओ, सोंटा की तुक क्या होगी?

गुलदस्ता : अभी लो।

[काफ़ी देर तक सोचता रहता है, सिर खुजाता है और परेशान होता है।]

गुलदंस्ता : झोंटा... कोंटा... खोंटा... रोंटा... उफ़। यह कैसा शब्द है इस शब्द को क्या हो गया है इसकी कोई तुक ही नहीं।

नजानू : देखा! खुदने ही ऐसा शब्द लिया जिसकी कोई तुक ही नहीं है। उस पर कहते हो कि मुझमें कविता रचने की प्रतिभा नहीं है।

गुलदस्ता : अच्छा-अच्छा है प्रतिभा! बस? मेरा तो सिर दर्द करने लगा। इस तरह की कविताएं लिखो, जिनका कोई अर्थ हो।

नजानू : इसका मतलब... यह तो बहुत आसान है।

गुलदस्ता : बिलकुल! बहुत आसान है।... बुद्धू कहीं का। कविता करते-करते कहीं पिट न जाए।

[गुलदस्ता बड़बड़ाता हुआ चला जाता है। नजानू उछलता है। अपनी पुरानी जगह पर पहुंच कर सोचने लगता है। दूसरे बच्चे खेलते-खेलते थक जाते हैं।]

सुस्तराम : भई, अपन तो थक गए।

मोटू : हम भी।

जानू : हम भी।

जल्दबाज़ : अच्छा, अब राजा का मुर्ग़ा खेलते हैं।

छोटू : हां, ठीक है।

जानू : मैं थानेदार।

जल्दबाज़ : मैं पहरेदार।

छोटू : मैं मुर्ग़ा।

मोटू : मैं और सुस्तराम, सिपाही।

जल्दबाज़ : हां चलो।



[मोटू और सुस्तराम दोनों हाथों से बाग का दरवाज़ा बना कर खड़े हो जाते हैं। जल्दबाज़ पहरा देता है।]

जल्दबाज़ : जागते रहो ऽऽऽ।

छोटू : कुकडूं-कूं ऽऽऽ।

जानू : यह मुर्ग़ा किसका!

छोटू : राजा का!

जल्दबाज़ : क्या लेने आया?

छोटू : खीरा ककड़ी, वन की डोर। राजा कहे, पपीता तोड़।

जानू : हूं ऽऽ। राजा की निशानी है?

छोटू : हां! यह देखो राजा की कलगी।

[नजानू अचानक चिल्लाता हुआ उनके पास आता है।]

नजानू : अरे, सुनो सुनो! मैंने बहुत अच्छी कविताएं रची हैं।

सुस्तराम : अच्छा!

मोटू : किसके बारे में हैं तुम्हारी कविताएं?

जानू : ज़रा सुनाओ तो।

नजानू : मेरी सारी कविताएं तुम्हीं लोगों के बारे में हैं। सबसे पहली कविता को जानू की ही है। लो, सुनो, :

जानू गया टहलने नदिया के तट पर
जाते-जाते कूदा मोटर की छत पर।

जानू : झूठ मैं मोटर की छत पर कब कूदा?

नजानू : अरे, ऐसा तो सिर्फ़ कविता में हुआ, तुक मिलाने के लिए।

जानू : यानी तुक मिलाने के लिए तुम मेरे बारे में ऐसी झूठी बातें कहोगे।

नजानू : और क्या, मुझे सच्ची बात कहने की क्या पड़ी है? जो सच है वो तो है ही।

जानू : अच्छा! ज़रा फिर से तो ऐसा करके देखो तब पता चलेगा।

मोटू : ठीक है-ठीक है! लड़ो मत। अच्छा, और दूसरों के बारे में तुमने क्या लिखा है?

नजानू : लो, जल्दबाज़ के बारे में सुनो :

जल्दबाज़ को भूख लगी
निगल गया ज़िंदा मुर्ग़ी।



जल्दबाज़ : छी! यह मेरे बारे में इसने क्या लिखा है? मैंने तो कभी अंडा भी नहीं निगला।

नजानू : हां-हां। मगर तुम चिल्लाते क्यों हो? यह तो मैंने तुक मिलाने के लिए कहा है।

जल्दबाज़ : मगर मैंने कोई मुर्ग़ी नहीं निगली। न ज़िंदा न पकी हुई।

नजानू : ओफ़। तो मैं सच में थोड़े ही कह रहा हूं। यह तो कविता है।

जल्दबाज़ : बड़ी अच्छी कविता, थू।

नजानू : अच्छा, लो! सुस्तराम की कविता सुनो :

सुस्तराम की जेब देखो
रखा है मीठा सेब देखो!

सब : दिखाओ-दिखाओ।

सुस्तराम : झूठ, सफ़ेद झूठ! मेरी जेब में कोई सेब नहीं है। लो देख लो।

छोटू : हां-हां! इसकी जेब में तो कुछ भी नहीं है।

नजानू : तुम लोग कविता के बारे में तो कुछ भी नहीं समझते। ऐसा सिर्फ़ तुक मिलाने के लिए कहा गया है कि जेब में सेब रखा है। कोई असल में थोड़े ही रखा है। मैंने मोटू के बारे में भी कविता लिखी है।

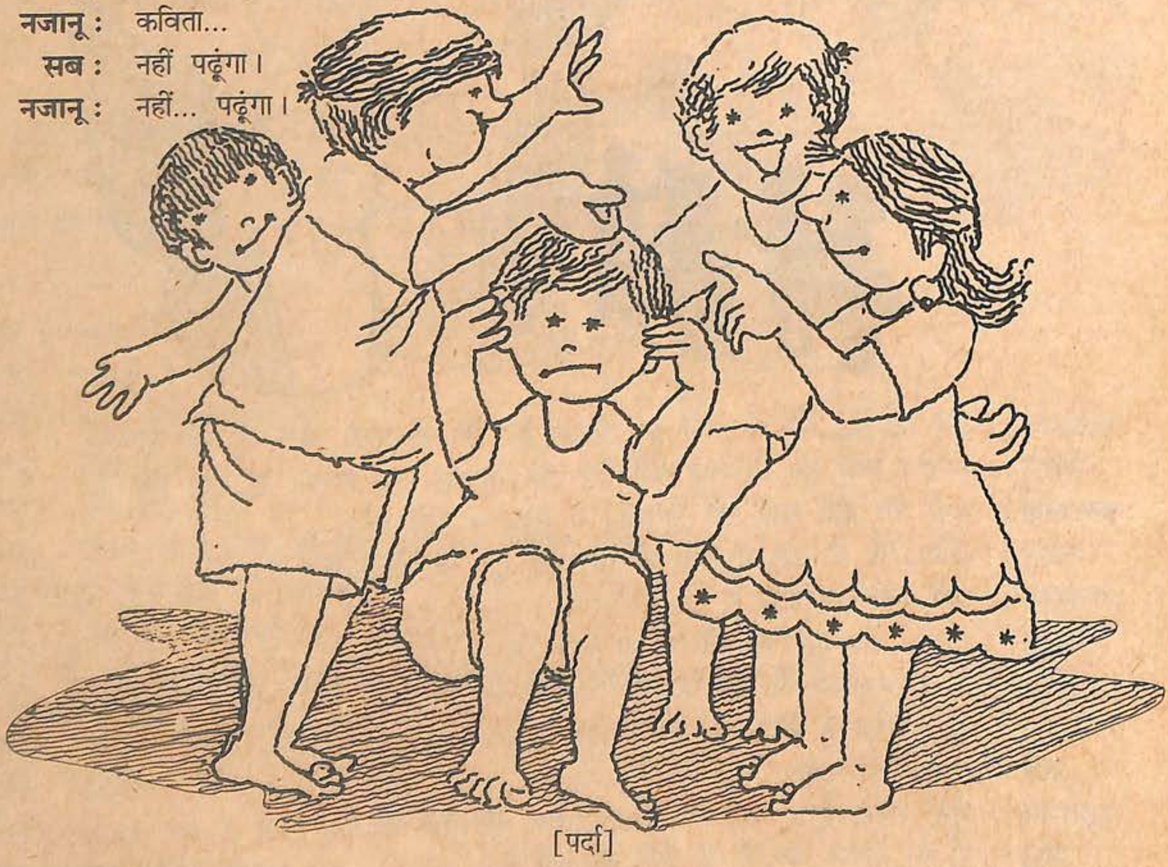
मोटू : अपनी बकवास बंद करो। यह हमारे बारे में साफ़ झूठ बघार रहा है और हम चुपचाप सुनते रहें।
छोटू : बहुत हो गया, हमें नहीं सुननी कविता-फविता। यह कोई कविता है? यह तो हमें चिढ़ाना है।
जल्दबाज़ : वाह! पहली कैसी चुपचाप सुनते रहे?
जानू : जैसे उसने हमारे बारे में कविताएं पढ़ीं, उसी तरह वह दूसरों के बारे में भी पढ़ेगा।
छोटू-मोटू : हमें नहीं चाहिए। हम नहीं सुनेंगे।
नजानू : अगर तुम लोग कविता सुनना नहीं चाहते तो मैं जाकर पड़ोसियों को सुनाऊंगा।
मोटू : अच्छा तुम्हारी इतनी हिम्मत! रुको बताता हूं।

[मोटू और छोटू और बाक़ी सब मिलकर नजानू को मारने दौड़ते हैं।]

नजानू : रुको-रुको! तुम लोगों को अच्छा नहीं लगता तो मैं कविता नहीं पढ़ूंगा।... तुम मुझे मारो मत।
छोटू : सच कह रहे हो?
नजानू : सच, बिल्कुल सच।
मोटू : तो लगाओ उठक-बैठक।

[नजानू उठक-बैठक लगाने लगता है।]

सुस्तराम : बोलो, मैं...!
नजानू : मैं...!
छोटू : अब कभी...
नजानू : अब कभी...
मोटू : कविता...
नजानू : कविता...
सब : नहीं पढ़ूंगा।
नजानू : नहीं... पढ़ूंगा।



[पर्दा]

निकोलाई नोसोव की कहानी का नाट्य रूपांतर, द्वारा कविता सुरेश।

सभी चित्र : धनंजय, भोपाल



सुजीत कुमार चौधरी, चौथी, टेंगनमाड़ा, बिलासपुर



रघुपाल आचार्य, तीन वर्ष, चुनार

पंजीयन क्रमांक 50309/85 के अंतर्गत भारत के समाचार पत्रों के रजिस्टार द्वारा पंजीकृत।
डाक पंजीयन क्रमांक BPL/DN/MP/431/90



रेक्स डी रोजारियो की ओर से विनोद रायना द्वारा भंडारी ऑफसेट प्रिंटर्स, भोपाल से मुद्रित एवं एकलव्य, ई-1/208, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462 016 से प्रकाशित।
संपादक : विनोद रायना।